इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ

एम.टी.टी.–021

अनुवाद प्रशिक्षण

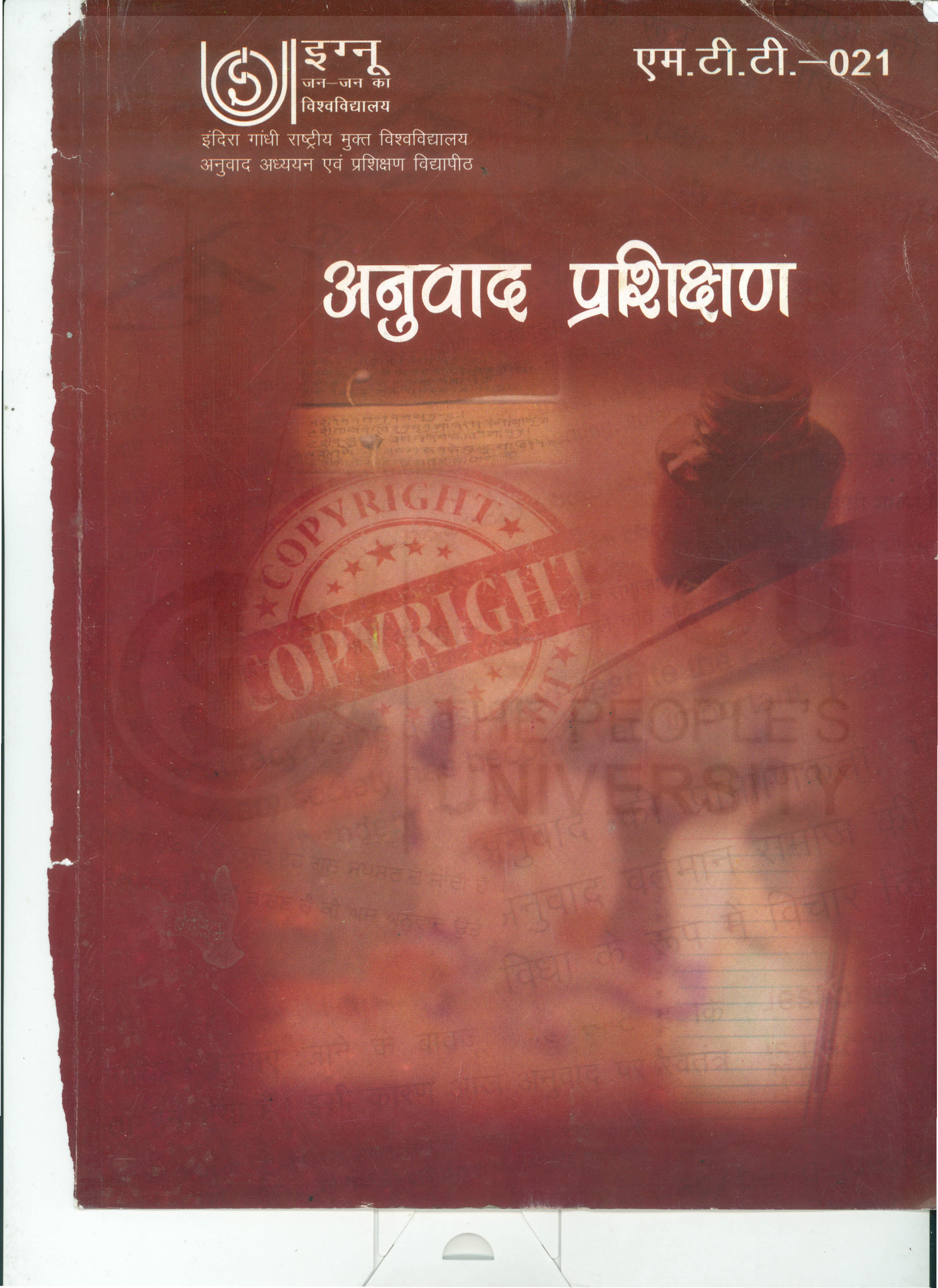

खण्ड

2

व्यावसायिक नैतिकता और व्यवहार संहिता

इकाई 3
प्रतिलिप्यधिकारी के अधिकारों का सम्मान 43

इकाई 4
प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अनुवाद के लिए व्यावसायिक नैतिकता 57

खण्ड-2 का परिचय

व्यावसायिक नैतिकता और व्यवहार संहिता शीर्षक इस दूसरे खण्ड की दो इकाइयों में *'प्रतिलिप्यधिकारी के अधिकारों का सम्मान'* तथा *'प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अनुवाद के लिए व्यावसायिक नैतिकता'* से सम्बन्धित कई नैतिक और वैधानिक प्रसंगों पर सूक्ष्मता से विचार किया गया है। अनुवाद, प्रकाशन एवं अन्य विधाओं की प्रस्तुति के लिए व्यावसायिक निष्ठा एवं शिष्टाचार के सम्बन्ध में कई मसले ऐसे हैं, जिन पर लापरवाही में लोग विचार नहीं करते, पर उससे सृजेता के अधिकारों का हनन और भावनाओं का अतिक्रमण होता है। सृजेता की मृत्यु के साठ वर्ष बाद कृति पर प्रतिलिप्यधिकारी का अधिकार समाप्त हो जाता है; अनुवादक, प्रकाशक, एवं अन्य प्रयोक्ता उसकी पुनर्प्रस्तुति हेतु उन्मुक्त हो जाते हैं, किन्तु प्रयोक्ताओं का नैतिक दायित्व फिर भी बना रहता है। इस खण्ड में इन्हीं प्रसंगों का विश्लेषण किया गया है।

इकाई 3 प्रतिलिप्यधिकारी के अधिकारों का सम्मान

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 प्रतिलिप्यधिकार एवं प्रतिलिप्यधिकारी

3.3 बर्न कन्वेन्शन

3.4 यूनेस्को समझौता

3.5 बौद्धिक सम्पदा अधिकार

3.6 भारत और बौद्धिक सम्पदा संरक्षण अधिकार

3.7 प्रतिलिप्यधिकार का महत्त्व

3.8 प्रतिलिप्यधिकार का पंजीकरण

3.9 भारतीय प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम

3.10 सम्बद्ध अधिकारों से जुड़े कानून

3.11 प्रतिलिप्यधिकार (संशोधन) अधिनियम 1996

3.12 विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन प्रतिलिप्यधिकार सन्धि

3.13 बौद्धिक उद्यम के सिपाही : अनुवादक

3.14 अनुवादक, प्रकाशक और अन्य प्रयोक्ताओं की नैतिकता

3.15 प्रतिलिप्यधिकारी के अधिकार का सम्मान

3.16 सारांश

3.17 अभ्यास के लिए प्रश्न

3.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

यह इकाई प्रतिलिप्यधिकारी के अधिकारों से सम्बद्ध है। इस इकाई को पढ़ने से अनुवाद अध्ययन में एम. ए. करनेवाले शिक्षार्थियों को प्रतिलिप्यधिकार एवं प्रतिलिप्यधिकारी के अधिकारों के सम्मान से सम्बन्धित संक्षिप्त जानकारी मिलेगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रतिलिप्यधिकार एवं प्रतिलिप्यधिकारी के अधिकार और कर्तव्य के बारे में जान सकेंगे;
- बौद्धिक उद्यम एवं प्रतिलिप्यधिकार के महत्त्व से परिचित हो सकेंगे;
- प्रतिलिप्यधिकार के अतिलंघन की परिणतियों को समझ सकेंगे; और
- अनुवादक, प्रकाशक और अन्य प्रयोक्ताओं की नैतिकता से अवगत होंगे।

3.1 प्रस्तावना

पुराने जमाने में रचनाओं को लेकर शायद नागरिक उदारता पर्याप्त थी, इसलिए प्रतिलिप्यधिकार जैसे शासकीय और विधिविहित संरक्षण की अलग से जरूरत नहीं हुई होगी। भारत के अलावा दुनिया के बाकी देशों में भी प्रतिलिप्यधिकार का इतिहास बहुत पुराना नहीं है।

मानव सभ्यता के प्रारम्भिक दौर से ही हर समाज-व्यवस्था अपने समकालीन सृजेता का निरासक्त सम्मान करती आई है। आज हम जिसे प्रतिलिप्यधिकार संरक्षण कहते हैं, वह प्रकारान्तर से उसी सृजनात्मकता का सम्मान है, सृजन के प्रोन्नयन का उद्यम है। सृजन की संस्कृति ही किसी समाज की पहचान सुनिश्चित करती है। हर समाज अपने सर्जकों, कलाकारों की उपलब्धि के उत्कर्ष से गौरवान्वित होता है। सृजन और कला के प्रोन्नयन से संस्कृति की श्रीवृद्धि होती है।

तथ्य है कि मुद्रण-कला के विकास से पूर्व कृतियों की प्रतिलिपियाँ हाथ से ही तैयार की जाती थीं। सन् 1436 में जर्मनी में मुद्रण मशीन का आविष्कार हुआ, और मुद्रित पुस्तकों के प्रति समाज का सम्मोहन बढ़ चला। पर धर्म और सरकार की मान्यता के प्रतिकूल किसी पंक्ति का सार्वजनिक हो जाना इंग्लैण्ड-शासन को किसी स्थिति में स्वीकार्य न था। उन्हें पल-पल शंका रहती थी कि पुस्तक में ईसाई धर्म और सरकार के प्रतिकूल कुछ मुद्रित न हो जाए। लिहाजा मुद्रण से पूर्व राजाज्ञा अनिवार्य कर दी गई। पुस्तकों के मुद्रण का अर्थ वस्तुतः उसकी मूल प्रति की प्रतिलिपियाँ तैयार करना है। और, कृति की प्रतिलिपि तैयार होने देने का सारा हक तो नैतिक रूप से मूल सृजेता का होना चाहिए! यह अधिकार सृजेता का ही होगा कि वह अपने सृजन की प्रतिलिपि तैयार करने/कराने की स्वीकृति किसी को दे या न दे। सृजेता के इसी अधिकार को प्रतिलिप्यधिकार, अर्थात प्रतिलिपि तैयार करने का अधिकार कहा गया, अंग्रेजी में इसे कॉपीराइट (Copyright) कहते हैं। सन् 1709 में सर्वप्रथम एक अधिनियम द्वारा यह अधिकार सृजेता को दिया गया।

वैसे सचाई यह है कि मुद्रणकला के प्रचार से पूर्व किसी रचना या कलाकृति से किसी तरह का आर्थिक लाभ कोई और उठा भी नहीं सकता था। सम्भवतः इस कारण भी प्रतिलिप्यधिकार की बात पहले न उठी हो! वस्तुतः प्रतिलिप्यधिकार का उद्देश्य रचनाकार, या रचनाकार द्वारा अधिकृत व्यक्ति/संस्था के उस अधिकार की रक्षा करना है, जिसकी अवहेलना कर कोई अन्य व्यक्ति या संस्था आर्थिक या अन्य कोई लाभ न उठा ले। कानूनी प्रावधान के अनुसार यह सुरक्षा एक निर्धारित अवधि तक ही है।

लेखकों, कलाकारों, प्रस्तोताओं के साथ-साथ साहित्यिक तथा कलात्मक कृतियों के प्रकाशकों को प्रेरित करने और बढ़ावा देने के लिए प्रतिलिप्यधिकार तथा समीपवर्ती अधिकार के नाम से प्रचलित कुछ और अधिकारों का अस्तित्व बना। कृतियों के पुनरुत्पादन या बिक्री/वितरण के लिए किसी को अधिकृत करना अथवा रोकना प्रतिलिप्यधिकारी का मुख्य अधिकार है। रचनाकार का यह प्रतिलिप्यधिकार न केवल उनके अपने देश में बल्कि *बर्न कन्वेन्शन* के तहत निर्देशित किसी भी राष्ट्र में संरक्षित है। फिलहाल लगभग 117 देश *बर्न कन्वेन्शन* के तहत निर्देशित होते हैं।

प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम यह भी सुनिश्चित करता है कि शिक्षा अथवा शोध सदृश प्रस्तावों के लिए इस संरक्षित कृतियों में जन-प्रवेश प्रतिबन्धित नहीं है। यह नियम विदेशी रचनाकारों की कृतियों को भी संरक्षण देता है, बशर्ते कि दूसरा देश भी हमारे रचनाकार को संरक्षा प्रदान करे।

इस पाठ में कृति के अनुवाद, प्रकाशन, प्रसारण, वितरण आदि के प्रतिलिप्यधिकार से सम्बन्धित इन्हीं मसलों पर चर्चा की जाएगी।

प्रतिलिप्यधिकार की चर्चा आते ही *बर्न कन्वेन्शन* पदबन्ध बड़ी प्रमुखता से गूँज उठता है। सबसे पहले इसी बिन्दु पर विचार होना चाहिए, पर विषय प्रवेश की दृष्टि से प्रतिलिप्यधिकार एवं प्रतिलिप्यधिकारी पर चर्चा शुरू करते हैं।

3.2 प्रतिलिप्यधिकार एवं प्रतिलिप्यधिकारी

प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम का सीधा सम्बन्ध बौद्धिक सम्पदा से है। कला, साहित्य, संगीत, अभिनय आदि से जुड़े हर शिक्षित नागरिक को इसके बारे में चैतन्य और नैतिक रहना चाहिए, पर विडम्बना है कि इसके व्यावहारिक पक्षों से आज भी ढेर सारे लोग अनभिज्ञ हैं। प्रतिलिप्यधिकार बौद्धिक सम्पदा का एक स्वरूप है जो कृतिकार को अपनी कृति पर एक निश्चित अवधि के लिए प्रकाशन, वितरण, विक्रय आदि सहित पुनरुत्पादन, संक्षेपण, रूपान्तरण, अनुवाद, अनुकूलन, समनुदेशन के सभी अनन्य अधिकार देता है। यह रचनाकार के कौशल से उत्पन्न या तैयार हुए उत्पाद्य के उपयोग को अधिकृत करने वाले कानून से जोड़ता है। इसमें रंग-रूप-रस-गन्ध-लय-स्वाद से सम्बद्ध रचनाकार की किसी

रचना का हर उपयोग--प्रतिलिपि, वितरण, बिक्री, सुधार, रूपान्तरण, साहित्यिक, इलेक्ट्रॉनिक अथवा अन्य किसी भी पद्धति की पुनर्प्रस्तुति समाविष्ट हैं। अर्थात जब तक कोई रचनाकार अपनी रचना की किसी भी तरह की पुनर्प्रस्तुति का अधिकार अनुबन्ध द्वारा किसी और को न दे दे, लेखक/रचनाकार/निर्माता के किसी भी सृजन का प्रतिलिप्यधिकार उस लेखक/रचनाकार/निर्माता के पास ही होता है। इसलिए कृति के प्रतिलिप्यधिकारी ही तय करेंगे कि उनकी कृतियाँ, फिल्म के लिए ली जाएँ या अन्य किसी उद्देश्य के लिए; उनका प्रकाशन कौन करे, वे कहाँ बेची जाएँ...आदि। प्रकाशक, प्रसारक, या कृति को सार्वजनिक करने वाले अन्य कोई भी व्यक्ति/संस्था इन कृतियों के सौदे से जो कुछ अर्जित करेगा/करेगी, रचनाकार को उनके श्रम-फल के एवज में और उनके सृजनात्मक प्रयास को प्रेरित करने के लिए उसका लाभांश देना होगा।

तमाम वैधानिक प्रावधानों के बावजूद बौद्धिक सम्पदा के स्वामित्व के सम्मान हेतु समाज के नैतिक बल और निर्द्वन्द्व इच्छा-शक्ति की बड़ी जरूरत होती है। इतिहास और परम्परा का अनुशीलन करते हुए हम पाते हैं कि हमारे यहाँ ज्ञान और कला-कौशल का मूल्यांकन कभी आर्थिक मानदण्डों पर नहीं किया गया। थोड़े-से भेद के साथ हर समय के राजघरानों द्वारा ज्ञानियों और कलाकारों को आर्थिक सुरक्षा दी जाती रही है। ऐतिहासिक सूत्रों से इस बात की भी जानकारी मिलती है कि तेजस्वी और अध्यवसायी व्यक्तियों को ज्ञानार्जन और कौशल उन्नयन के लिए राजघरानों से वृत्ति भी दी जाती थी। कला-साहित्य-संस्कृति के संवर्द्धन और अदीबों एवं हुनर के उस्तादों के सम्मान में मुगल शासकों की सदाशयता लोगों को आज भी भली-भाँति याद है। उल्लेखनीय है कि हमारे समाज की सृजनशील मौखिक परम्पराओं ने लोक-साहित्य और लोक-संस्कृति का परिरक्षण बखूबी किया है। हम बेहतर जानते हैं कि हरेक समाज-राष्ट्र की विशिष्ट पहचान उसकी कला-साहित्य-संस्कृति से बनती है, शायद यही कारण हो कि हुनरमन्द कलाकारों के नैष्ठिक अभ्यास, समकालीन समाज की जन-चेतना के अनुराग से संवर्द्धित-पोषित कला-साहित्य-संस्कृति को उस दौर के शासकों ने नीति के तहत इतना अधिक महत्त्व दिया हो! शहंशाह अकबर की तो धारणा ही बनी हुई थी कि जो व्यक्ति अपने हुनर में उस्ताद हैं, उन पर निश्चय ही ईश्वर की विशेष कृपा है, उनसे मिलना, ईश्वर से मिलने के बराबर है। हो-न-हो उन्होंने अपने दरबार के नवरत्नों की नियुक्ति इसी धारणा से की हो। बाद के दिनों में राजशाही रही नहीं, तो कला-साहित्य-संस्कृति का वैसा पोषण कहाँ से सम्भव होता? पर समाज हित में जो कलाकार आज रच रहे हैं, या रचते आए हैं, वे सामाजिक व्यवस्था की एक बड़ी जिम्मेदारी निभा रहे हैं। अब जो लोग अपनी समस्त आसक्तियों से निर्लिप्त होकर निष्ठा-भाव से समुदाय-हित में इतना कुछ कर रहे हैं, उनके लिए समाज और सामाजिक सत्ता का भी कुछ दायित्व बनता है। ऐसे में उनका, अपनी कला के प्रति उनकी लगन का, और उनकी पारिवारिक जिम्मेदारियों का भरण-पोषण कैसे हो? समाज के हर व्यक्ति को जब अपनी प्रतिभा, कौशल, समय, श्रम का प्रतिदान मिलता है, तो कलाकारों को भी मिलना चाहिए! इतना ही नहीं, नैतिकता कहती है कि समय, श्रम, कौशल, संसाधन लगाकर रचनाकार जो रचता है, उस रचना पर उसकी पहचान के साथ उसका स्वामित्व भी होना चाहिए। यही बौद्धिक सम्पदा का स्वामित्व है। इसे कानूनी भाषा में प्रतिलिप्यधिकार कहा गया है। और, इस प्रतिलिप्यधिकार के अनन्य स्वामी को प्रतिलिप्यधिकारी कहते हैं।

3.3 बर्न कन्वेन्शन

अन्तरराष्ट्रीय दृष्टि से प्रतिलिप्यधिकार के सम्बन्ध में *बर्न कन्वेन्शन* पहला महत्त्वपूर्ण समझौता है। इसे *इण्टरनेशनल कन्वेन्शन* भी कहते हैं। सन् 1886 में हुए इस समझौते के बाद *बर्न कन्वेन्शन* के दस्तावेज में कई बार संशोधन हुए।

अन्तरराष्ट्रीय साहित्य और कला संघ के सम्मानित सदस्य विक्टर ह्यूगो की प्रेरणा से *बर्न कन्वेन्शन* का उद्भव हुआ, इस कारण यह फ्रेंच के *'लेखकीय अधिकार'* की धारणा से प्रभावित था। तदनुसार रचनात्मक कार्यों के लिए सृजन के तत्काल बाद बगैर माँग और घोषणा के प्रतिलिप्यधिकार आप से आप लागू माना गया। इस कन्वेन्शन का पालन करने वाले देशों में किसी लेखक के लिए प्रतिलिप्यधिकार पंजीकरण हेतु आवेदन करने की कोई जरूरत नहीं समझी गई। कृति के पूर्ण होते ही, उसका भौतिक स्वरूप स्थिर होते ही, उस पर अथवा उसके अंशों/अवयवों पर समस्त प्रतिलिप्यधिकार लेखक का माना गया, बशर्ते कि लेखक स्वयं उसे स्पष्टतः अस्वीकार न करे, या कि प्रतिलिप्यधिकार की अवधि समाप्त न हो जाए। *बर्न कन्वेन्शन* से सहमति रखने वाले सदस्य देशों के लेखकों की कृतियों की तरह

विदेशी लेखकों की कृतियों पर भी प्रतिलिप्यधिकार के समान अधिकार और विशेषाधिकार लागू माने गए।

बर्न कन्वेन्शन के वजूद में आने से पहले आम तौर पर केवल अपने देश में रचित कृतियों पर राष्ट्रीय कॉपीराइट कानून लागू होता था। उदाहरण के लिए किसी ब्रिटिश नागरिक द्वारा ब्रिटेन में प्रकाशित कृति पर यह कानून ब्रिटेन में तो लागू होता था, पर फ्रांस का कोई नागरिक चाहे तो बेखटक उसकी नकल कर सकता था, या बेच सकता था। बाद के दिनों में इस स्थिति पर एक डच प्रकाशक अलबर्टस विलेम सिजथॉफ (Albertus Willem Sijthoff) ने अनूदित कृतियों के व्यापार के महत्त्व का मसला उठाते हुए सन् 1899 में नीदरलैण्ड की महारानी विहेल्मिना (Wilhelmina) को लिखा कि इस रवायत से डच प्रकाशन उद्योग पर असर पड़ेगा।

उल्लेखनीय है कि नेपथ्य की तैयारी की तरह *बर्न कन्वेन्शन* ने बौद्धिक सम्पदा के पेटेण्ट, ट्रेडमार्क, और औद्योगिक डिजाइन के लिए, औद्योगिक सम्पदा संरक्षण हेतु सन् 1883 के *पेरिस कन्वेन्शन* पद्धति के नक्शेकदम एक अन्तरराष्ट्रीय संगठन की रूपरेखा तैयार की। सन् 1886 का *बर्न कन्वेन्शन* उसी तैयारी का परिणाम था। प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ निपटाने हेतु *पेरिस कन्वेन्शन* की तरह ही उसने एक ब्यूरो भी गठित किया। सन् 1893 में आकर इन दोनो अभिकरणों के विलय से संयुक्त अन्तरराष्ट्रीय बौद्धिक सम्पदा संरक्षण ब्यूरो(United International Bureau for the Protection of Intellectual Property) बना, जो फ्रेंच की संक्षिप्त संज्ञा बी.आई.आर.पी.आई. (BIRPI) के रूप में जाना गया। संयुक्त राष्ट्र और अन्य अन्तरराष्ट्रीय संगठनों से निकटता बढ़ाने के उद्देश्य से बर्न में अवस्थित बी. आई.आर.पी.आई., सन् 1960 में जेनेवा स्थान्तरित हो गया। सन् 1967 में यह विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन (WIPO) नाम से चर्चित हुआ। और, सन् 1974 में संयुक्त राष्ट्र का संगठन हो गया।

इस दौरान समय-समय पर इस दस्तावेज में परिस्थितियों की माँग के अनुकूल संशोधन-परिवर्द्धन भी होता रहा। पेरिस (सन् 1896), बर्लिन (सन् 1908), बर्न (सन् 1914), रोम (सन् 1928), ब्रसेल्स (सन् 1948), स्टॉकहोम (सन् 1967), और पेरिस (सन् 1971) में आयोजित सम्मेलनों में इस मसौदे का संशोधन हुआ। सन् 1979 में इसमें पुनर्संशोधन हुआ।

वस्तुतः *बर्न कन्वेन्शन* की मूल अवधारणा थी कि उसके सभी भागीदार देश अपने देश के नागरिकों और अन्य सदस्य देशों के नागरिकों की प्रकाशित और अप्रकाशित रचनाओं पर प्रतिलिप्यधिकार सुरक्षा की व्यवस्था दे। सन् 1928 के रोम संशोधन में साहित्यिक, वैज्ञानिक, और कलात्मक पाठ के अलावा अन्य रचनाएँ भी संरक्षा हेतु शामिल की गईं, उसकी अभिव्यक्ति बेशक किताब रूप में हो, पर्चा हो, या लेखन की कोई भी विधा में हो; व्याख्यान, भाषण, उपदेश, अथवा इस प्रकृति की कोई अन्य अभिव्यक्ति हो। इसमें नृत्य-रचना, नाट्य कृति-कर्म, नाट्य-संगीत, मूक-बधिरों के लिए चित-मन रंजन दृश्य, विषय केन्द्रित अभिनय-कौशल, चित्रकला, रेखांकन, वास्तुकला, मूर्तिकला, उत्कीर्णन, लिथोग्राफी, विषय-चित्र (illustrations), भौगोलिक चार्ट, योजना, रेखाचित्र, भूगोल से सम्बन्धित प्लास्टिक कृति, स्थलाकृति (topography), विज्ञान, अनुवाद, रूपान्तरण, अनुकूलन, संगीत व्यवस्था, एवं अन्य प्रतिकृतियों के साहित्यिक या कलात्मक पुनरुत्पादन.. . सारी ही कृतियों को प्रतिलिप्यधिकार संरक्षण की सूची में शामिल किया गया।

सन् 1948 के ब्रसेल्स संशोधन में चलचित्र-निर्माण और फोटो भी शामिल हुए। इसके अलावा, रोम और ब्रसेल्स संशोधन में सभी सदस्य देशों में अन्तर्देशीय कानून के तहत औद्योगिक उद्देश्यों से सम्बद्ध कार्यों को भी इसमें संरक्षण दिया गया। रोम संशोधन में ही यह पारित हुआ कि प्रतिलिप्यधिकार की अवधि लेखक की सम्पूर्ण आयु के बाद पचास वर्षों तक रहेगा, पर कुछ देशों को यह भी छूट दी गई कि वहाँ की व्यवस्था चाहे तो यह अवधि अपने घरेलू प्रावधानों के तहत कम भी कर सकता है। रोम और ब्रसेल्स संशोधनों में अनुवादों के अधिकार की रक्षा की गई, पर स्टॉकहोम प्रोटोकॉल और पेरिस संशोधन ने कुछ हद तक उदारता दिखाई और यह व्यवस्था दी कि विकासशील और विकसित देशों के बीच हुए आपसी समझौतों के आधार पर इस दिशा में नम्य हुआ जा सकता है।

सन् 1955 में हुए अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन को *युनिवर्सल कॉपीराइट कन्वेन्शन* कहा गया। प्रतिलिप्यधिकार के सम्बन्ध में सन् 1886 से सन् 1955 के बीच हुए सात अन्य सम्मेलनों के नाम इस प्रकार हैं – मॉण्टेविडियो कन्वेन्शन (सन् 1889), मेक्सिको सिटी कन्वेन्शन (सन् 1902), रियो डी जनेरो कन्वेन्शन (सन् 1906), ब्यूनस आयरिस कन्वेन्शन (सन् 1910), कैराकस ऐग्रीमेण्ट (सन् 1911), हवाना कन्वेन्शन (सन् 1928) और वाशिंगटन कन्वेन्शन (सन् 1914)।

3.4 यूनेस्को समझौता

प्रतिलिप्यधिकार के क्षेत्र में इतने समझौतों और करारों के कारण स्थिति बड़ी पेचीदी होती गई, ऐसे में किसी सर्वमान्य विश्वव्यापी समझौते की अनिवार्यता प्रबल हो गई। लिहाजा संयुक्त राष्ट्र संघ की सम्बद्ध संस्था यूनेस्को (संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन) ने यह मामला अपने हाथ में लिया और सन् 1949 में इस मसले का तत्काल समाधान निकालने का निश्चय किया। जल्दी ही एक विश्वव्यापी प्रतिलिप्यधिकार समझौता तैयार हुआ। छह सितम्बर, 1952 से लेकर आगे के चार महिनों तक की अवधि में इस पर चालीस देशों ने हस्ताक्षर किए। बाद के दिनों में भी सहूलियत से सदस्य होने का प्रावधान इसमें रखा गया। हस्ताक्षरकर्ता देशों की सूची इस प्रकार है : अण्डोरा, अमेरिका, अर्जेण्टाइना, आयरलैण्ड, आस्ट्रिया, आस्ट्रेलिया, इटली, इसराइल, उरुग्वे, अल सालवाडोर, क्यूबा, कनाडा, ग्वाटीमाला रेटी, चिली, जापान, डेनमार्क, नार्वे, निकारागुआ, नीदरलैण्ड, पुर्तगाल, पेरू, पोपनगर, फिनलैण्ड, फ्रांस, बेल्जियम, ब्राजील, ब्रिटेन, भारत, मेक्सिको, मोनैको, लाइबेरिया, लक्जम्बर्ग, यूगोस्लाविया, स्पेन, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड, संघीय जर्मन गणराज्य (पश्चिमी जर्मनी), सान्तामेरिया और होण्डुरास। निर्णीत रूप से यह समझौता 16 सितम्बर, 1955 से लागू हुआ।

इस समझौते में निम्नलिखित उल्लेखनीय बातें दर्ज हुईं :

1. हर रचनाकार के पूरे जीवन-काल के लिए उनको और उनकी मृत्यु के पचीस वर्ष बाद तक रचनाकार के वैधानिक उत्तराधिकारी को उनकी रचना के लिए प्रलिप्यधिकार संरक्षण मिलना चाहिए।

2. यह अनिवार्य नहीं कि कोई संस्था किसी विदेशी रचनाकार की रचना के लिए उनके देश में निर्धारित अवधि से अधिक समय तक संरक्षण दे।

3. अनुवाद के लिए मूल रचनाकार से अधिकार-पत्र की प्राप्ति आवश्यक होगी। किन्तु पूर्व अनुवाद के प्रकाशन के सात वर्ष बाद तक प्रकाशक ने यदि उसका प्रकाशन न किया हो, तो उस राज्य की सरकार दूसरी संस्था को अनुवाद प्रकाशित करने का लाइसेन्स दे सकेगी। यदि पिछले संस्करण की प्रति बाजार में उपलब्ध न हो, उस स्थिति में भी लाइसेन्स दिया जा सकेगा, बशर्ते कि मूल रचनाकार को उचित श्रम-फल दिया जाए और अनुवाद युक्तियुक्त हो।

इस समझौते के अनुसार एक अन्तर्शासकीय समिति भी गठित की गई जो समय-समय पर इसके ज्वलन्त मसलों पर विचार करे।

3.5 बौद्धिक सम्पदा अधिकार

किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा सृजित संगीत, साहित्यिक कृति, कला, खोज, प्रतीक, नाम, चित्र, डिजाइन आदि को बौद्धिक सम्पदा कहते हैं। किसी भौतिक धन (फिजिकल प्रोपर्टी) के स्वामी की तरह ही हर व्यक्ति अपनी बौद्धिक सम्पदा का भी स्वामी होता है। इसी लिए सृजेता को बौद्धिक सम्पदा अधिकार दिए जाने का प्रावधान किया गया। हर सृजेता अपने बौद्धिक सम्पदा के उपयोग का नियन्त्रण कर सकता है और उसके उपयोग से भौतिक सम्पदा (धन) बना सकता है। इस प्रकार बौद्धिक सम्पदा अधिकार द्वारा सृजेता के अधिकार की सुरक्षा होती है और लोग खोज तथा नवाचार के लिए उत्साहित होते हैं। बौद्धिक सम्पदा कानून के तहत बौद्धिक सम्पदा के स्वामी को संगीत, वाद्ययन्त्र ध्वनि रचना, साहित्य, कला, अनुसन्धान और आविष्कार, प्रतीकों, डिजाइनों जैसी अमूर्त सम्पत्ति के लिए कुछ विशेष अधिकार दिए गए हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी के उपादानों से भरे इस आधुनिक युग में सॉफ्टवेयर अत्यधिक मूल्यवान प्रौद्योगिकी है; कंम्प्यूटर, इण्टरनेट आदि सब कुछ इसके अन्तर्गत आते हैं। ये उपादान आज हमारे जीवन के हर पहलू को प्रभावित कर रहे हैं। इनमें सर्वाधिक प्रभावित हमारी संचार-व्यवस्था है। स्वामित्व संरक्षण की दिशा में कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर की बौद्धिक

सम्पदा भी भारतीय *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम, 1957* के उपबन्धों के तहत आती है।

सन् 1994 में भारतीय *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* में प्रमुख परिवर्तन आरम्भ किए गए थे, जो 10 मई, 1995 से लागू हुए। भारतीय *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* में किए गए ये संशोधन/परिवर्तन दुनिया के सबसे कड़े संशोधन/परिवर्तन थे। जून, 1994 में किए गए ये संशोधन भारतीय प्रतिलिप्यधिकार के क्षेत्र में ऐतिहासिक घटना थी। इसमें *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* की स्पष्ट व्याख्या के साथ–प्रतिलिप्यधिकार के धारक के अधिकार, सॉफ्टवेयर के किराए की स्थिति, बैकअप प्रतियाँ तैयार करने के लिए उपयोगकर्ता के अधिकार और सॉफ्टवेयर के प्रतिलिप्यधिकार के उल्लंघन के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया। इस अधिनियम के अनुसार उल्लंघनकर्ता को दीवानी और आपराधिक दोनों तरह की सजा दी जा सकती है। अधिकांश सॉफ्टवेयर की नकल बड़ी सहूलियत से सम्भव होने, और नकल भी असल की तरह प्रभावी लगने के कारण इस पर प्रतिलिप्यधिकार का कड़ा रुख अपनाया गया।

3.6 भारत और बौद्धिक सम्पदा संरक्षण अधिकार

आज के वैश्विक परिदृश्य में हर रचनाकार, कलाकार, आविष्कारक के पास सांविधिक रूप से बौद्धिक सम्पदा संरक्षण अधिकार होना चाहिए, ताकि वे अपने श्रमफल का उचित वाणिज्यिक मूल्य प्राप्त कर सके। विश्व व्यापार संगठन की बौद्धिक सम्पदा प्रणाली के तहत इसे सुरक्षित रखा जाता है। भारत द्वारा बनाई गई बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रणाली विश्व व्यापार संगठन के अनुरूप है और सांविधिक, प्रशासनिक, न्यायिक, सभी स्तरों पर भली-भाँति सुविचारित है। बौद्धिक सम्पदा के महत्त्व के मद्देनजर भारत सरकार ने इसके प्रचालन को कारगर बनाने हेतु सराहणीय पहल की हैं। वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्रालय में, औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग के अधीन 'महानियन्त्रक, पेटेण्ट, डिजाइन और ट्रेडमार्क (सीजीपीडीटीएम)' के कार्यालय का गठन भी किया गया।

3.7 प्रतिलिप्यधिकार का महत्त्व

चिन्तन और बौद्धिक श्रम से उत्पन्न मूल विचार, साहित्य, सिद्धान्त, कृति, कलारूप, तकनीकी सिद्धान्त या संयन्त्र पर उसके सृजेता का वैसा ही सर्वाधिकार है, जैसा अपने खेत में उगाए फसल पर किसी किसान का। *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* द्वारा सृजेता के इसी स्वामित्व को संरक्षण मिलता है। कृति के भौतिक रूपाकृति में आते ही सृजेता का प्रतिलिप्यधिकार स्वामित्व उस पर हो जाता है, और वह *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* द्वारा नियन्त्रित होने लगता है।

प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम के अन्तर्गत आज सभी बौद्धिक, वैज्ञानिक, रचनात्मक कार्य नियन्त्रित होते हैं, जिसमें साहित्य की समस्त विधाएँ, गीत, संगीत, वीडियो, नृत्य, शिल्प, सॉफ्टवेयर आदि का समावेश है। अपनी कृति, विचार आदि के रक्षार्थ कृतिकार चाहे तो प्रतिलिप्यधिकार कार्यालय में उसका पंजीकरण करा सकता है।

रचनाकार की अनुमति लिए बिना दूसरों के निजी जीवन की जानकारी की नकल करना प्रतिलिप्यधिकार के नैतिक सिद्धान्तों का उल्लंघन है। ऑनलाइन जानकारी का उपयोग करते समय भी प्रतिलिप्यधिकार मुद्दों के बारे में सावधान रहना चाहिए।

विदित है कि हमारे समाज के विद्वान, कलाकार कभी आर्थिक फायदे के पीछे दत्तचित्त नहीं रहे, पर सचाई है कि सदा से उन्हें एक सामाजिक सम्मान मिलता रहा है। पुराने जमाने में अपने ज्ञान को सार्वजनिक करने का एक मात्र रास्ता वे अपने किसी योग्य शिष्य में देखते थे। यह भी सच है कि तब मुद्रणकला नहीं थी, फलस्वरूप अपने ज्ञान को सार्वजनिक करने का अन्य कोई रास्ता भी उनके समक्ष नहीं था। वैसे तथ्य यह भी है कि इतिहास-काल में हमारा समाज इस विवशता के कारण कई निरर्थक, अवांछित, और अमानवीय विडम्बनाओं का शिकार हुआ है। हमारे समाज में बहुचर्चित किंवदन्ती है कि हर गुरु अपने शिष्यों से एक ज्ञान/पेंच बचा रखते थे। अब जरा इस पर गौर करें कि हजारो बरसों की हमारी सभ्यता में यदि हर गुरु ने वाकई ऐसा किया है तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी भारत से कितने ज्ञान विलुप्त होते चले गए।

दूसरी समस्या थी कि गुरुजन अपनी विद्यापीठ में शिष्यों के प्रवेश के समय जाति-वंश-लिंग का भी भेदभाव रखते थे। कर्ण और एकलव्य की कथा किसी से अलक्षित नहीं है। उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों और दलितों को किस तरह शिक्षा

से दूर रखा गया, यह क़था भी हम सबको विदित है। मुद्रण और अनुवाद के कौशल के अवदान से हम और हमारा समाज इतना अधिक सम्पन्न हुआ है कि आज हमें ज्ञान की आकुलता भर होनी चाहिए, हमें उद्यमशील होना चाहिए। आज हमें ज्ञानार्जन हेतु किसी दाता के समक्ष भीख माँगने की जरूरत नहीं है। ज्ञान आज गुरुओं की वाणी में कैद नहीं है, किताबों में प्रकाशित है। कोई भी पुस्तक विक्रेता हमारी जाति पूछकर हमें किताबें नहीं बेचता। मुद्रण और अनुवाद ने आज ज्ञानाकुल उद्यमशील लोगों के लिए जाति, धर्म, लिंग, सम्प्रदाय, भाषा-ज्ञान आदि के समस्त बन्धनों को तोड़कर एक सहूलियत दी है। ... इस हाल में तो समाज का दायित्व और भी बढ़ जाता है कि रचनाकार के प्रतिलिप्यधिकार का सम्मान, संरक्षण किया जाए।

पुराने समय की रचनाओं को देखकर एक और पहलू उजागर होता है कि रचनाकारों को अपने बौद्धिक श्रम-फल के लिए समुचित आर्थिक सुरक्षा तो नहीं ही थी, सम्भवतः कृतियों पर मालिकाना हक भी सन्दिग्ध रहता था। हो न हो इसी विडम्बना के वशीभूत रचनाकारों ने भनिता जोड़ने की पद्धति अपनाई हो! रचनाओं के अन्तिम अंश में 'विद्यापति कवि तुअ पद सेवक' या 'मीरा के प्रभु गिरिधर नागर' या सूर, तुलसी, रहीम, रसखान आदि की रचनाओं में इस तरह की रवायत देखकर प्रतीत होता है कि शायद उसमें वे स्वामित्व, या कि अधिकारपूर्वक अपने कथन की घोषणा की मंशा रखते हों।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार, जिसे आई.पी.आर. (Intelectual Property Rights) भी कहते हैं, ने रचनाकारों को इस असुरक्षा-बोध से मुक्त किया है। काश, उस दौर में भी ऐसी सुरक्षा की कोई योजना होती!

प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम सृजेता को उसकी रचना का स्वामित्व प्रदान करता है। कोई दूसरा व्यक्ति उसकी रचना की चोरी नहीं कर सकता, उसकी अनुमति के बिना अनुवाद नहीं कर सकता, प्रतिलिपि नहीं बना सकता, रूपान्तरण या अनुकूलन नहीं कर सकता, प्रकाशित; प्रसारित व प्रदर्शित नहीं कर सकता।

इन वर्जनाओं का किसी भी तरह का अतिलंघन करने वाला अथवा अतिलंघन की प्रेरणा देनेवाला *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* के उल्लंघन का दोषी माना जाएगा और उसे छह महीने से तीन वर्ष तक की कैद और पचास हजार से लेकर दो लाख रुपए तक का जुर्माना हो सकता है।

भारत में प्रतिलिप्यधिकार का दायित्व मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के उच्च शिक्षा विभाग को है।

3.8 प्रतिलिप्यधिकार का पंजीकरण

कोई सृजेता चाहे तो वह अपनी कृति के प्रतिलिप्यधिकार के लिए पंजीकरण भी करा सकता है। इसके लिए प्रतिलिप्यधिकार कार्यालय में निर्धारित प्रपत्र विधिवत भरकर जमा किया जाता है। अलग-अलग रचना के लिए अलग-अलग आवेदन किया जाता है। हर आवेदन पत्र के साथ निर्धारित आवेदन शुल्क देना होता है। आवेदन पत्र, आवेदक अथवा प्राधिकृत वकील द्वारा हस्ताक्षरित होता है, जिसमें वकील के पक्ष में प्राधिकार पत्र अनिवार्य रूप से संलग्न होना चाहिए। प्रपत्र में वांछित प्रविष्टियाँ सावधानी से भरी जानी चाहिए। पंजीकरण प्रकाशित, अप्रकाशित दोनों ही प्रकार की कृतियों का हो सकता है। अप्रकाशित पंजीकृत कृति के प्रकाशित हो जाने पर निर्धारित शुल्क के साथ फॉर्म भर कर प्रतिलिप्यधिकार पंजी में दर्ज प्रविष्टि में परिवर्तन हेतु आवेदन किया जा सकता है। इस विषय पर पिछली इकाइयों में विस्तार से चर्चा हो चुकी है।

3.9 भारतीय प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम

भारत में प्रतिलिप्यधिकार विषय से सम्बन्धित परिचालित नियम *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम, 1957 (अधिनियम सं 14)* से अनुशासित होता है। इससे पूर्व यहाँ परिचालित *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम-1914* बहुत कुछ ब्रिटेन के *'इम्पीरियल प्रतिलिप्यधिकार एक्ट (1911)'* पर आधारित था, कह सकते हैं कि वह ब्रिटिश कॉपीराइट अधिनियम, 1911 का ही अनिवार्य विस्तार था। भारतीय स्वाधीनता अधिनियम के अनुच्छेद 18(3) के अनुसार उसे अनुकूलित कर लिया गया। वह कानून और उसके नियम भारत में सन् 1957 से पूर्व तक चलते रहे। नया कानून बनने पर सन् 1957 में पुराना कानून निरस्त हो गया। सन् 1956 के ब्रिटेन के नए *प्रतिलिप्यधिकार कानून* के प्रावधानों को भी बड़े पैमाने

पर भारत में अपनाया गया। इस समय भारत में *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम, 1957* द्वारा प्रतिलिप्यधिकार सम्बन्धी सारे नियम अनुशासित हैं। अर्थात *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* में आज अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों और प्रतिलिप्यधिकार सन्धियों के सारे प्रवधान शामिल हैं।

उल्लेखनीय है कि भारत सन् 1886 के *बर्न कन्वेन्शन* (सन् 1971 में पेरिस में संशोधित), सन् 1951 के यूनिवर्सल कॉपीराइट कन्वेन्शन और सन् 1995 के व्यापार सम्बन्धी आयामों के बौद्धिक सम्पदा अधिकार (टी.आर.आई.पी.एस.) का सदस्य है। यद्यपि भारत सन् 1961 के रोम कन्वेन्शन, विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन प्रतिलिप्यधिकार सन्धि और डब्ल्यू.आई.पी.ओ. परफारमेन्स एण्ड फोनोग्राम्स ट्रीटी का सदस्य नहीं है, पर *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* इसके अनुरूप है।

प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम (धारा 17) के अनुसार कृति का सृजेता प्रतिलिप्यधिकार का पहला स्वामी होता है। हालाँकि, किसी अनुबन्ध के तहत सेवाकाल के दौरान किए गए कार्यों के लिए उसका नियोक्ता ही प्रतिलिप्यधिकार का पहला स्वामी होता है। प्रतिलिप्यधिकार का प्रथम स्वामी उस कृति का अथवा भविष्य में रची जानेवाली किसी कृति का प्रतिलिप्यधिकार किसी व्यक्ति को पूरी तरह या आंशिक रूप से या विषय सीमाओं की शर्त के साथ पूरी अवधि के लिए या सीमित समय के लिए समनुदेशित (Assigned) कर सकता है। बशर्ते कि भविष्य में रची जानेवाली कृति के अस्तित्व में आने के बाद ही उसके लिए प्रतिलिप्यधिकार प्रभावी होगा (धारा 18)। धारा 19 में समनुदेशन के तरीकों का उल्लेख है, इसके अनुसार समनुदेशन केवल लिखित रूप में किया जा सकता है और उसमें कृति के नाम, क्षेत्र, समनुदेशन की अवधि का उल्लेख अवश्य होना चाहिए। धारा 19(5) में उल्लेख है कि यदि समनुदेशन की अवधि संविदा में निर्धारित नहीं है तो इसे पाँच वर्ष का माना जाएगा। धारा 19(6) के अनुसार क्षेत्र-सीमा तय नहीं होने की स्थिति में यह भारत भर के लिए माना जाएगा।

हम जान चुके हैं कि प्रतिलिप्यधिकार के बल पर ही रचनाकार अपने श्रम-फल और अपनी कृतियों के माध्यम से धनार्जन करने में समर्थ हो पाते हैं। बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के तहत भारत में *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* सन् 1957 से लागू हुआ। इस कार्य विशेष के लिए नियुक्त रजिस्ट्रार के अधीन केन्द्र सरकार द्वारा संस्थापित/नियन्त्रित प्रतिलिप्यधिकार कार्यालय का संचालन शुरू हुआ। इसका मुख्य काम रचनाकारों के अनुरोध पर उनका और उनकी रचनाओं का पंजीकरण करना हुआ।

इसके साथ-साथ रजिस्ट्रार के नेतृत्व में एक प्रतिलिप्यधिकार बोर्ड की स्थापना की गई, इस बोर्ड को कई मामलों में दीवानी अदालतों के अधिकार भी प्राप्त हैं। यहाँ तक कि रजिस्ट्रार के आदेशों के विरुद्ध इस बोर्ड में अपील भी की जा सकती है।

इस बोर्ड के अध्यक्ष उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, या अवकाशप्राप्त न्यायाधीश हो सकते हैं, उनकी सहायता के लिए अन्य तीन व्यक्तियों की नियुक्ति का प्रावधान भी है, पर उन तीनों का साहित्य एवं कलाओं का जानकार होना अनिवार्य है। इस बोर्ड के आदेशों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

विदित है कि साहित्य सृजन, अभिनय, संगीत, कला, फिल्म निर्माण, रिकॉर्डिंग आदि से सम्बन्धित निर्दिष्ट कार्य के लिए रचनाकार या उनके द्वारा अधिकृत व्यक्ति को प्राप्त एकाधिकार ही प्रतिलिप्यधिकार है। और, इस अधिकार का विधिवत हस्तान्तरण सम्भव है।

अपनी कृति के लिए हर रचनाकार को जीवन भर के लिए तथा उनकी मृत्यु के बाद उनके वैधानिक उत्तराधिकारी को आगे के साठ वर्षों तक प्रतिलिप्यधिकार प्राप्त रहेगा। उल्लेखनीय है कि 28 दिसम्बर 1991 से पूर्व तक सृजेता की मृत्यु के बाद पचास वर्षों तक ही यह अधिकार मान्य था। तेरह अप्रैल 1992 को प्रकाशित *भारत का राजपत्र असाधारण, अनुभाग 1 क, पृ. 159* में दर्ज सूचनानुसार *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम 1957* में *प्रतिलिप्यधिकार (संशोधन) अधिनियम 1992, संख्यांक 13* द्वारा संशोधन किया गया। उल्लिखित मसौदे में भारत गणराज्य के तैंतालीसवें वर्ष में संसद द्वारा अधिनियमित किया गया कि 28 दिसम्बर 1991 से लागू विधान के अनुसार *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम 1957* के अध्याय-5 में जहाँ-जहाँ 'पचास वर्ष' है, वहाँ-वहाँ 'साठ वर्ष' रखा जाए। इसके साथ ही *प्रतिलिप्यधिकार*

(संशोधन) अधिनियम 1991, संख्यांक-9 को निरसित कर दिया गया।

तदनुसार कोई भी व्यक्ति/संस्था प्रतिलिप्यधिकारी की विधिवत अनुमति के बिना उनकी कृति/कृतियों की प्रतिलिपि या अनुवाद या अन्य संक्षिप्त/रूपान्तरित/विधान्तरित प्रस्तुति नहीं कर सकता। आवश्यकतानुसार कोई पुस्तकालय किसी पुस्तक की प्रतिलिपि करा तो सकता है पर वह प्रतिलिपि बिक्री हेतु नहीं रखी जा सकती।

इस अधिनियम में विधान-विरुद्ध आचरण करनेवालों को दण्ड देने और रचनाकार को हुई क्षति की भरपाई कराने की व्यवस्था भी है। यदि कोई प्रस्तोता अपनी प्रस्तुति में कृति के मूल स्वरूप में कृतिकार की सहमति के बिना कुछ ऐसा परिवर्तन करता है, जिससे कृतिकार की प्रतिष्ठा पर आँच आती है, तो अधिनियम में कृतिकार की क्षतिपूर्ति कराने की व्यवस्था भी है।

3.10 सम्बद्ध अधिकारों से जुड़े कानून

प्रतिलिप्यधिकार बोर्ड के समक्ष प्रतिलिप्यधिकार-अवधि के दौरान यदि भारत की किसी प्रकाशित या सार्वजनिक हो गई रचना के सम्बन्ध में शिकायत आती है कि प्रतिलिप्यधिकारी – रचना के पुनर्प्रकाशन, अनुवाद, या अनुवाद प्रकाशन की अनुमति नहीं दे रहे हैं, रचना को सार्वजनिक करने (मुद्रित, ध्वन्यांकित, वाचिक,रूपान्तरित, भाषान्तरित... किसी भी रूप में) से मना कर रहे हैं, इस कारण रचना जनता तक पहुँच नहीं बना पा रही है, और उस रचना का सार्वजनिक होना जनहित में है – तो प्रतिलिप्यधिकार बोर्ड, प्रतिलिप्यधिकारी को सुनवाई का समुचित अवसर देने के बाद जाँच-परख कर प्रतिलिप्यधिकार रजिस्ट्रार को निदेश दे सकता है कि वह शिकायतकर्ता को रचना के पुनर्प्रकाशन करने, जनता के सामने लाने या जनता में प्रसारण करने का लाइसेन्स प्रदान करे, बशर्ते कि प्रतिलिप्यधिकारी के विधानविहित दाय की भरपाई कर दी जाए। प्रतिलिप्यधिकार रजिस्ट्रार प्रतिलिप्यधिकार बोर्ड के निर्देशानुसार विधिविहित पद्धति से शिकायतकर्ता को लाइसेन्स प्रदान करेगा।

3.11 प्रतिलिप्यधिकार (संशोधन) अधिनियम 1996

तमाम संशोधनों, परिष्कारों के बावजूद विगत वर्षों में तीव्र तकनीकी विकास, खासकर इलेक्ट्रॉनिक्स तथा डिजिटल तकीनीकों के क्षेत्र में हुए विकास के कारण उपलब्ध प्रतिलिप्यधिकार-व्यवस्था द्वारा प्रदत्त संरक्षण अपर्याप्त हो गया। विदित है कि बिना किसी प्राधिकरणिक वरदहस्त के इण्टरनेट पर पुस्तकें, फिल्में तथा गाने प्रचारित/प्रसारित होने लगे, उनमें इच्छानुसार संशोधन, परिवर्तन होने लगे, कृतिकारों को कोई रायल्टी दिए बगैर उनकी कृतियों की बेहतरीन प्रतियाँ निर्मित/वितरित होने लगीं, दुनिया भर के लोग महसूस करने लगे कि कृतिकारों की हित-रक्षा हेतु प्रतिलिप्यधिकार संरक्षण नियम में खास संशोधन आवश्यक है।

प्रतिलिप्यधिकारों तथा समीपवर्ती अधिकारों पर डिजीटल तकनीकियों के प्रभाव की जाँच हेतु विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन (वर्ल्ड इण्टेलेक्चुअल प्रोपटी आर्गनाइजेशन) द्वारा गठित विशेषज्ञों की समिति ने तीन नए समझौते का मसौदा तैयार किया :

- साहित्यिक और कलात्मक दुनिया के संरक्षण सम्बन्धी समझौता (प्रतिलिप्यधिकार समझौता)
- फोनोग्रामों के कलाकारों और निर्माताओं के अधिकारों के संरक्षण से सम्बन्धित समझौता, तथा
- आँकड़ा-भण्डारों (डाटाबेस) के स्वतः संरक्षण सम्बन्धी समझौता (आँकड़ा-भण्डार समझौता)

प्रस्तावित समझौतों के महत्त्वपूर्ण प्रावधानों पर इस संयुक्त मंच के सदस्य देशों द्वारा गहन विचार-विमर्श हुआ। विकासशील देशों के क्षेत्रीय समूहों के बीच और विकासशील देशों तथा उद्योगीकृत राष्ट्रों के बीच संवाद भी हुए।

दरअसल पारम्परिक पद्धति के पुनरुत्पादन में कृतियों की प्रतियाँ साकार दिखती हैं, अपनी भौतिक अवस्था में रहती हैं, पर इलेक्ट्रॉनिक युग के प्रभाव से कृति विशेष की पुनरुत्पादित प्रतियाँ साकार और दृश्य नहीं भी रह सकतीं। इस कारण रचनाकार की अनुमति लिए बिना या उन्हें जानकारी दिए बिना, किसी मानदेय राशि का भुगतान किए बिना,

उनकी कृतियों का अनधिकृत विदोहन सम्भव हो गया था। किसी गाने या किसी फिल्म का कोई अंश कृतिकार को जानकारी दिए बिना अथवा उनकी स्वीकृति लिए बिना इण्टरनेट पर प्रसारित किया जा सकता था, उसे डाउनलोड कर अपने उपयोग हेतु रखा जा सकता था। कुछ वर्ष पूर्व तक कई देशों में यह सुनिश्चित नहीं था कि इण्टरनेट पर उपलब्ध कृति के निर्माण में मौजूदा प्रतिलिप्यधिकार नियम का अतिक्रमण है या नहीं? पर नए अन्तरराष्ट्रीय करारनामे के अन्तर्गत इन्हें भी शामिल कर लिया गया। संयोगवश, भारतीय *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* में ऐसा प्रावधान कुछ समय पहले ही कर लिया गया था।

कृतियों को किराए पर प्रसारित करने की स्थिति में दृश्य श्रव्य कृति, ध्वन्यांकन और कम्प्यूटर प्रोग्राम आदि के प्रतिलिप्यधिकारी उसका भुगतान लेने के भागीदार होते हैं। उदाहरण के लिए जब कोई वीडियो कैसेट किसी कैसेट संग्राहक द्वारा कहीं किराए पर दिया जाता है तो कैसेट के अधिकारों के स्वामी को इस व्यापार के लिए भुगतान होगा। चूँकि *बर्न कन्वेन्शन* में किराए के अधिकार सम्बन्धी बातें नहीं थीं, इसलिए नए समझौते के मसौदे में कृतिकारों के इस अधिकार पर परामर्श दिया गया और भारतीय कानून का जिक्र किया गया, क्योंकि भारतीय कानून में ऐसा पहले से ही विद्यमान था।

उस प्रस्ताव में कलाकारों को अपनी अचल प्रस्तुतियों के पुनरुत्पादन, संशोधन, वितरण तथा आयात का अधिकार, किराए पर लगाने या प्रसारित करने का अधिकार शामिल हुआ। अर्थात् यह अधिकार कलाकारों को पूरी तरह वैसा ही दिया गया जैसा अपने फोनोग्रामों के लिए प्रस्तोताओं को है।

समझौतों में रचनाकारों के अधिकारों को सुरक्षित करने के प्रावधानों के लिए तीन तरह के बड़े महत्त्वपूर्ण सुझाव थे :

- बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की व्यापार सम्बन्धी संविदा (ट्रेड रिलेटेड आस्पेक्ट्स आफ इण्टेलेक्चुचुअल प्रोपर्टी राइट्स एग्रीमेण्ट) में कुछ प्रेरणात्मक प्रावधान हों, जो भारतीय कानून में पहले से हैं।
- तकनीकी संयन्त्रों की प्रतियों के गलत तरीके से निर्माण, निर्यात तथा वितरण की सुविधा को अवैध करार दिया जाए। इस प्रावधान के साथ यह सैद्धान्तिक प्रश्न भी था कि उपयोग की बेशुमार सम्भावनाओं के मद्देनजर ऐसे तकनीकी संयन्त्रों की अवैध प्रतियाँ संयन्त्र के विकास को अवरुद्ध करेगा, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रोन्नति का अहित करेगा, साथ ही ऐसे संयन्त्रों का आपराधिक उपयोग भी सम्भव होगा।
- इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में उपलब्ध कृतियों के सम्बन्ध में कृति के स्वामित्व की इंगिति तथा अन्य आवश्यक सूचना देने के प्रावधान, और किसी तरह का अन्यथा हस्तक्षेप अवैध समझे जाने की अपेक्षा की गई।

उपलब्ध कापीराइट नियम में आँकड़ा-भण्डारों के संकलन तथा संयोजन में रचनाकार के श्रम हेतु सुरक्षा की व्यवस्था थी, पर आँकड़ों के लिए सुरक्षा-व्यवस्था नहीं थी। लिहाजा उसी तर्ज पर भिन्न आँकड़ा संयोजित कर किसी शरारती तत्त्व द्वारा उसका स्वामी बनने, और उसका मनमाना उपयोग करने की पूरी सम्भावना थी। इसलिए नए समझौतों में आँकड़ा-भण्डारों (डाटाबेस) के सुरक्षित उपयोग हेतु प्रस्ताव किया गया।

3.12 विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन प्रतिलिप्यधिकार सन्धि

बर्न कन्वेन्शन के उपलब्ध दस्तावेज में उक्त मसलों पर पहले से तवज्जो नहीं दी गई थी, लिहाजा सूचना प्रौद्योगिकी और इण्टरनेट द्वारा इन पर सवाल उठाए जाने पर *विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन (WIPO) कॉपीराइट सन्धि* के मसौदे में सन् 1996 में इन मसलों का समाधान अख्तियार किया गया।

विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन प्रतिलिप्यधिकार सन्धि (डब्ल्यू.आई.पी.ओ. कॉपीराइट सन्धि या WCT) सन् 1996 में विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन (डब्ल्यू.आई.पी.ओ.) के सदस्य देशों द्वारा अपनाए गए कॉपीराइट कानून पर एक *अन्तरराष्ट्रीय सन्धि* है। सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में तीव्र प्रगति के कारण इस सन्धि के प्रावधान पिछले कॉपीराइट सन्धियों की तुलना में आवश्यक और अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान करते हैं। इसमें यह सुनिश्चित किया गया है कि

साहित्यिक कृतियों की तरह कम्प्यूटर प्रोग्राम भी (अनुच्छेद 4) संरक्षित है और आँकड़ा-भण्डार (डाटाबेस) में सामग्री की व्यवस्था एवं चयन व्यवस्था (अनुच्छेद 5) सुरक्षित है। यह अनुच्छेद 6 से 8 तक में कृति के सृजेता को अपनी कृति के किराये और वितरण पर नियन्त्रण का अधिकार देता है, जो अकेले *बर्न कन्वेन्शन* के तहत नहीं हो सकता था। यह तकनीकी उपायों (अनुच्छेद 11) और निर्माण में निहित अधिकार प्रबन्धन सूचना के अनधिकृत संशोधन (अनुच्छेद 12) की तरकीब पर प्रतिबन्ध लगाता है।

20 दिसम्बर 1996 को जेनेवा, स्विट्जरलैण्ड में हस्ताक्षरित इस सन्धि की पर्याप्त आलोचना हुई। कहा गया कि यह बहुत व्यापक है। प्रावधान के अनुसार तकनीकी सुरक्षा उपायों के वैधानिक और उचित उपयोग की तरकीब पर भी निषेध हो जाएगा और आर्थिक विकास तथा ज्ञान उद्योग की व्यापक भिन्नता के बावजूद सभी हस्ताक्षरकर्ता देशों के लिए समान मानक रूप तैयार किया गया है।

डब्ल्यू.आई.पी.ओ. कॉपीराइट सन्धि, डिजिटल मिलेनियम कॉपीराइट एक्ट (डी.एम.सी.ए.) द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका के कानून में लागू किया गया। इस सन्धि को यूरोपीय समुदाय की ओर से 16 मार्च 2000 के निर्णय 2000/278/ई. सी. द्वारा यूरोपीय संघ के परिषद ने मंजूरी दी।

यूरोपीय संघ के निर्देशों में मोटे तौर पर सन्धि के विषय में सॉफ्टवेयर के लिए कॉपीराइट संरक्षण, आँकड़ा-भण्डार (डाटाबेस) के लिए कॉपीराइट संरक्षण, डिजिटल अधिकार प्रबन्धन जैसे तकनीकी सुरक्षा उपायों की उपेक्षा की वर्जना शामिल हैं।

बर्न कन्वेन्शन के उपलब्ध दस्तावेज के प्रावधान से अधिक कॉपीराइट अवधि बढ़ाने का डब्ल्यू.आई.पी.ओ. कॉपीराइट सन्धि ने कोई सिफारिश नहीं की, परन्तु संयुक्त राज्य कांग्रेस ने डिजिटल मिलेनियम कॉपीराइट एक्ट और सोनी बोनो कॉपीराइट टर्म एक्स्टेन्शन एक्ट-- को पारित कर दिया। यूरोपीय संघ ने कॉपीराइट अवधि विस्तार के लिए अपनी अलग ही पद्धति अपनाई।

3.13 बौद्धिक उद्यम के सिपाही : अनुवादक

अनुवाद के महत्त्व और अनुवादक के दायित्व को लेकर हो रही चर्चा के मद्देनजर किसी को यह मानने में कतई कोई कोताही नहीं होनी चाहिए कि वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में एक अनुवादक न केवल बौद्धिक उद्यम के सिपाही हैं, बल्कि वे ज्ञान और विचार के विपुल भण्डार के वैश्विक संचरण और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कारण भी हैं। अनुवादक के उद्यम की परिणति ही है कि एक भाषा में उपजा हुआ ज्ञान/विचार, दूसरी भाषा तक जाकर वहाँ से समाज में बौद्धिक अलख जगाता है और मूल भाषा, एवं लेखकीय उद्यम से अंकित स्थानिक भंगिमा के सीमान्तरण से दो संस्कृतियों का मेल-जोल होता है।

पूर्व में चर्चा हो चुकी है कि हर समय, और हर क्षेत्र के सृजेता की कृति सम्बद्ध क्षेत्र, समाज और संस्कृति के लिए महत्त्वपूर्ण देन होती है, और, उनके इस नैष्ठिक अवदान के लिए उनके प्रतिलिप्यधिकार का सम्मान होना चाहिए। ठीक इसी तरह गौर से देखें तो अनुवादक का उद्यम कहीं और महत्त्वपूर्ण दिखेगा। उनके कौशल की नाव के सहारे एक भाषिक अभिव्यक्ति में सीमित ज्ञान-भण्डार दूसरी भाषिक अभिव्यक्ति में पहुँचकर अपनी पहचान बनाता है; अपने भौगोलिक परिवेश के चिन्तन, आबोहवा, तहजीब, लोक-जीवन आदि के परिचय को मुखर करता है। लिहाजा अनुवादक को भी प्रतिलिप्यधिकार की दिशा में अपनी रचना के लिए वे सभी अधिकार प्राप्त हैं, जो मूल लेखक को प्राप्त हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि अनुवादक का प्रतिलिप्यधिकार उस खास भाषा में हुए अनुवाद तक ही सीमित है, उस अनुवाद के प्रकाशन, वितरण, बिक्री, प्रसारण का अनन्य अधिकार अनुवादक के पास होता है। यह भी तय है कि जिस तरह किसी अनुवादक के प्रतिलिप्यधिकार का सम्मान करना समकालीन समाज और शासन का नैतिक दायित्व है; उसी प्रकार अनुवादक का भी यह दायित्व बनता है कि वे मूल लेखक और मूल रचना के प्रकाशक के प्रतिलिप्यधिकार के सम्मान-संरक्षण हेतु नैतिक विवेक का परिचय दे। कृति के अनुवाद से पूर्व मूल रचना के प्रतिलिप्यधिकारी की सहमति अवश्य ले ले।

3.14 अनुवादक, प्रकाशक और अन्य प्रयोक्ताओं की नैतिकता

इस दुनिया का एक भी व्यक्ति इस तथ्य से मुँह नहीं मोड़ेगा कि अनुवाद कर्म आज समय के दबाव में व्यावसायिक उद्यम हो जाने के बावजूद सारे सम्बद्ध घटकों के लिए उपकारी है। अनुवाद के जरिए एक भाषा का चिन्तन, दूसरी भाषा में पहुँचता है, अर्थात् एक पाठ की सीमित पहुँच को बड़े पाठक वर्ग तक पहुँचने का द्वार खोलता है, फलस्वरूप यह दोनों भाषाओं के लिए हितकारी है। स्रोतभाषा के पाठ का प्रचार हो रहा है, तो लक्ष्यभाषा का ज्ञान-कोष सम्पन्न हो रहा है। एक भाषा के रचनाकार का चिन्तन फलक दूसरी भाषा के पाठक समुदाय तक जा रहा है, आर्थिक लाभ के अलावा, उस सृजेता का पहचान-क्षेत्र बड़ा हो रहा है। लक्ष्यभाषा का प्रकाशक स्रोतभाषा के ज्ञान-पुंज का प्रकाशन करते हुए दोनों भाषाभाषी क्षेत्र के रचनात्मक परिदृश्य को व्यापकता और सम्पन्नता देने के पुनीत कार्य के साथ अपने व्यावसायिक प्रयास को विकसित कर रहा है।

अनुवादक अपने बहुभाषी ज्ञान, अनुवादकीय कौशल, भाषायी अनुराग, और बौद्धिक दायित्व का निर्वहण करते हुए जब अनुवाद करता है, तो उसमें धनार्जन के साथ-साथ उनकी अन्य अभिलाषाओं की भी पूर्ति होती है। उस अनुवाद के प्रथम और प्रमुख प्रयोक्ता पाठक होते हैं, उनकी ज्ञानाकुलता शान्त होती है; आत्मिक विकास होता है, चिन्तन की भव्यता बढ़ती है। उस अनूदित कृति के वितरक, विक्रेता, अन्य माध्यमों एवं विधाओं के उसके प्रस्तोता अपने वांछित उद्यम द्वारा धनार्जन करते हैं। स्पष्टतः अनुवाद एक ऐसा उद्यम है, जो किसी से कुछ भी प्रतिदान लिए बिना हर किसी को सम्पन्न करता है, सबका वांछित सबको देता है। अब ऐसे पुनीत और लोकधर्मी उद्यम से जुड़े सभी प्रयोक्ताओं की नैतिकता प्रबल हो उठती है।

ज्ञान-संचार के इस पुनीत यज्ञ के सारे होताओं का नैतिक कर्तव्य होता है कि वे अपने हिस्से के विवेक को तार्किक ढंग से रूपायित करें। मूल रचनाकार, मूल रचना के प्रकाशक, अनुवादक, अनूदित कृति के प्रकाशक, लक्ष्यभाषा के पाठक, लक्ष्यभाषा के अन्य माध्यमों के प्रस्तोता... सबका दायित्व सुनिश्चित है। कोई योग्य अनुवादक यदि किसी विशिष्ट कृति का अनुवाद करना चाहता है, तो मूल रचनाकार और मूल कृति के प्रकाशक उसके इस प्रयास में कोई व्यवधान उत्पन्न न करे; अनूदित कृति के प्रकाशन में प्रकाशक कोई छद्म न अपनाए, अनुवादक और मूल रचनाकार को समुचित मानदेय और श्रेय दे, मूलभाषा के प्रकाशक को उचित श्रेय दे, प्रकाशन सौष्ठव की गरिमा का ध्यान रखे; अनुवादक मूल रचना की आत्मा और मूल लेखक की भावना का सम्मान करते हुए अपने कौशल का परिचय दे; अन्य प्रस्तोता भी तदनुकूल आचरण करे ये सब सम्बद्ध प्रयोक्ताओं के नैतिक दायित्व हैं, इनका निर्वहण होना परम आवश्यक है।

3.15 प्रतिलिप्यधिकारी के अधिकार का सम्मान

अनुवाद की स्थिति में प्रतिलिप्यधिकार कई फलकों में बँटा रहता है। पहला प्रतिलिप्यधिकारी तो मूल रचनाकार या उनके द्वारा अधिकृत व्यक्ति/संस्था होता/होती है। किसी-किसी परिस्थिति में मूल रचना का प्रकाशक भी प्रतिलिप्यधिकारी होता है। दूसरा प्रतिलिप्यधिकारी अनुवादक या उनके द्वारा अधिकृत व्यक्ति/संस्था होता/होती है। कभी-कभी कोई संस्था या प्रकाशक भी अनूदित कृति का प्रतिलिप्यधिकारी हो सकता है। बौद्धिक सम्पदा संरक्षण कानून के तहत सबकी आर्थिक आकांक्षा की पूर्ति कर दिए जाने के बावजूद हर प्रतिलिप्यधिकारी का कुछ विशेष हक बनता है, जिनका सीधा सम्बन्ध नैतिकता और विवेक से होता है।

चाहे मूल लेखन हो, या अनुवाद; अपने सृजन के प्रति हर सृजेता का (लेखक/अनुवादक) अपनी रचना के विषय, बुनावट, भाषा, शब्द, संस्कृति के प्रति गहरा अनुराग होता है; और अपने उद्यम के प्रति किसी खास स्तर की मुग्धता रहती है। ऐसे में अनुवाद कार्य की अवधारणा से लेकर परिणति और उसके बाद तक के सम्बद्ध सभी लोगों का सम्मान भाव सबके लिए बना रहना चाहिए। *लक्ष्यभाषा* की भाषिक संरचना को लेकर मूल लेखक और अनुवादक के बीच कहीं वैमनस्य न आए, सौहार्दपूर्ण स्थिति में सारा कुछ सम्पन्न हो; अनुवादक अपने व्यावसायिक लाभ और निजी धारणा के कारण मूल पाठ के साथ कोई अभद्र अतिक्रमण न करे। प्रकाशित कृति पर आर्थिक प्रतिपूर्ति के साथ सबको समुचित श्रेय मिले। प्रकाशन सौष्ठव के लिए प्रकाशक सावधान रहे। अनूदित कृति के सहारे अन्य दृश्य-श्रव्य माध्यमों के

प्रस्तोता जो भी पुनरुत्पादन करे या सूचना-प्रौद्योगिकी में जो कुछ अपलोड हो, उन सबमें सभी घटकों को समुचित श्रेय मिले इन सबका सीधा सम्बन्ध मनुष्य की नैतिकता और विवेक से है। उल्लेखनीय है कि अनुवाद कर्म के प्रचार-प्रसार के सभी सोपानों से जुड़े हर व्यक्ति एक बौद्धिक समुदाय से आते हैं। *भारतीय प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* के अलावा भी इन बौद्धिक व्यक्तियों का दायित्व बनता है कि वे अपने नैतिक कर्तव्य का पालन करें। यह कर्तव्य पालन ही प्रतिलिप्यधिकारी के अधिकार का सम्मान होगा।

3.16 सारांश

मुद्रण-कला के विकास से पूर्व कृतियों की प्रतिलिपियाँ हाथ से ही तैयार की जाती थीं। प्रतिलिपि तैयार होने देने का सारा हक नैतिक रूप से मूल सृजेता का होता है। यह अधिकार सृजेता का ही होगा कि वह अपने सृजन की प्रतिलिपि तैयार करने की स्वीकृति किसी को दे या न दे। सृजेता के इसी अधिकार को प्रतिलिप्यधिकार, अर्थात प्रतिलिपि तैयार करने का अधिकार कहा गया, अंग्रेजी में इसे कॉपीराइट (Copyright) कहते हैं। *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* के कानूनी प्रावधान के अनुसार रचनाकार को यह सुरक्षा दी जाती है।

प्रतिलिप्यधिकार बौद्धिक सम्पदा का एक स्वरूप है जो कृतिकार को अपनी कृति पर एक निश्चित अवधि के लिए प्रकाशन, वितरण, विक्रय आदि सहित पुनरुत्पादन, संक्षेपण, रूपान्तरण, अनुवाद, अनुकूलन, समनुदेशन के सभी अनन्य अधिकार देता है। यह रचनाकार के कौशल से उत्पन्न या तैयार हुए उत्पाद्य के उपयोग को अधिकृत करने वाले कानून से जोड़ता है।

वैश्विक परिदृश्य में हर रचनाकार, कलाकार, आविष्कारक के पास सांविधिक रूप से बौद्धिक सम्पदा संरक्षण अधिकार होना चाहिए, ताकि वे अपने श्रमफल का उचित वाणिज्यिक मूल्य प्राप्त कर सके। विश्व व्यापार संगठन की बौद्धिक सम्पदा प्रणाली के तहत इसे सुरक्षित रखा जाता है। बौद्धिक सम्पदा के महत्त्व के मद्देनजर भारत सरकार ने इसके प्रचालन को कारगर बनाने हेतु सराहणीय पहल की। *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम* का उल्लंघन करनेवालों के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान है। भारत में प्रतिलिप्यधिकार का दायित्व मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के उच्च शिक्षा विभाग का है। प्रतिलिप्यधिकार सम्बन्धी नियम यहाँ *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम, 1957 (अधिनियम सं 14)* से अनुशासित होता है। जेनेवा में 20 दिसम्बर 1996 को हस्ताक्षरित नई सन्धि द्वारा इसे और कारगर और उपयोगी बनाया गया।

अनुवादक, बौद्धिक उद्यम के सिपाही होने के साथ-साथ ज्ञान और विचार के विपुल भण्डार के वैश्विक संचरण और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कारण होते हैं। अनुवादक के उद्यम से ही एक भाषा में उपजा हुआ ज्ञान/विचार, दूसरी भाषा तक जाकर समाज में बौद्धिक अलख जगाता है। अनुवाद एक ऐसा उद्यम है, जो किसी से कुछ भी प्रतिदान लिए बिना हर किसी को सम्पन्न करता है, सबका वांछित सबको देता है। ऐसे पुनीत और लोकधर्मी उद्यम से जुड़े सभी प्रयोक्ताओं की नैतिकता विवेकसम्मत होनी चाहिए। वस्तुतः बौद्धिक सम्पदा संरक्षरण कानून के तहत सबकी आर्थिक आकांक्षा की पूर्ति कर दिए जाने के बावजूद हर प्रतिलिप्यधिकारी का कुछ विशेष हक बनता है, जिनका सीधा सम्बन्ध नैतिकता और विवेक से होता है। अनुवाद कर्म के प्रचार-प्रसार के सभी सोपानों से जुड़े हर व्यक्ति एक बौद्धिक समुदाय से आते हैं। भारतीय प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम के अलावा भी इन बौद्धिक व्यक्तियों का दायित्व बनता है कि वे अपने नैतिक कर्तव्य का पालन करें।

3.17 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. प्रतिलिप्यधिकार एवं प्रतिलिप्यधिकारी की चर्चा करते हुए बर्न कन्वेन्शन के बारे में पिस्तार से लिखिए।
2. यूनेस्को समझौता और बौद्धिक सम्पदा अधिकार का परिचय दीजिए।
3. प्रतिलिप्यधिकार के महत्त्व को रेखांकित करते हुए प्रतिलिप्यधिकार पंजीकरणके बारे में अपनी राय दीजिए।
4. भारतीय प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम और सम्बद्ध अधिकारों से जुड़े कानून पर अपना मन्तव्य दीजिए।
5. प्रतिलिप्यधिकार (संशोधन) अधिनियम 1996 और विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन प्रतिलिप्यधिकार सन्धि क्या है?

6. बौद्धिक उद्यम के सिपाही के रूप में अनुवादक का परिचय दीजिए और अनुवादक, प्रकाशक एवं अन्य प्रयोक्ताओं की नैतिकता की व्याख्या कीजिए।

3.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम, 1957।*
- प्रतिलिप्यधिकार से सम्बन्धित विविध वेबसाइट।
- मिश्र, जयप्रकाश (डॉ.), *बौद्धिक सम्पदा अधिकार : एक परिचय,* इलाहाबाद, सेण्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स।
- Bhandari, M.K., *Intellectual Property Rights*, Allahabad, Central Law Publication.
- खन्ना, सन्तोष, *भारतीय कानूनों का समाज शास्त्र,* दिल्ली, भारत ज्योति प्रकाशन।
- गुप्त, गार्गी एवं टण्डन, पूरनचन्द(सं.), *अनुवाद बोध,* नई दिल्ली, भारतीय अनुवाद परिषद।
- तिवारी, भोलानाथ, *अनुवाद विज्ञान,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- अय्यर, एन.ई. विश्वनाथ, *अनुवाद कला,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
- गुप्त, अवधेश मोहन, *अनुवाद विज्ञान : सिद्धान्त और सिद्धि,* दिल्ली, राष्ट्रभाषा प्रकाशन।
- कुमार, सुरेश, *अनुवाद सिद्धान्त की रूपरेखा,* नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
- *अनुवाद (पत्रिका),* अनुवाद कला का प्रशिक्षण विशेषांक, अंक 53, नई दिल्ली, भारतीय अनुवाद परिषद।

इकाई 4 प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अनुवाद के लिए व्यावसायिक नैतिकता

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अनुवाद एवं पुनरुत्पादन की आजादी

4.3 प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अनुवाद के प्रकाशन की आजादी

4.4 प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अन्य प्रयोक्ताओं की आजादी

4.5 मूल पाठ के प्रति अनुवादक, प्रकाशक एवं अन्य प्रयोक्ताओं की निष्ठा

4.7 सारांश

4.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

यह इकाई प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अनुवाद के लिए व्यावसायिक नैतिकता से सम्बन्धित है। इस इकाई को पढ़ने से अनुवाद अध्ययन में एम. ए. करनेवाले शिक्षार्थियों को प्रतिलिप्यधिकार-मुक्त पाठ के अनुवाद के लिए व्यावसायिक नैतिकता सम्बन्धी संक्षिप्त जानकारी मिलेगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ और उसके अनुवाद की आजादी का अर्थ समझ सकेंगे;
- प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अनुवाद, प्रकाशन, प्रसारण अथवा अन्य पुनरुत्पादन में पाठ के प्रति प्रयोक्ताओं की आजादी और निष्ठा का अभिप्राय समझ सकेंगे; और
- अनुवादक एवं प्रकाशन की व्यवसायगत नैतिकता का अभिप्राय समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

किसी कृति के सृजेता की मृत्यु के बाद साठ वर्ष तक, और रचनाकार की मृत्यु के बाद प्रकाशित किसी रचना की स्थिति में उसके प्रथम प्रकाशन के साठ वर्ष तक का प्रतिलिप्यधिकार सृजेता के वैधानिक उत्तराधिकारी के पास होता है। इस अवधि के बीत जाने के बाद कृति प्रतिलिप्यधिकारमुक्त हो जाती है। उसके पुनर्प्रकाशन, अनुवाद, रूपान्तरण, आत्मसातीकरण, संक्षेपण, विधान्तरण आदि उद्यमों से जुड़े हर व्यक्ति निर्द्वन्द्व हो जाते हैं। फिर भी एक नैतिकता बची रहती है, कृति विशेष की गरिमा बनाए रखने के लिए इन उद्यमियों के समक्ष एक विवेक खड़ा रहता है, जिस कारण वह उस रचना, रचनाकार, भाषा, समाज, संस्कृति आदि के प्रति अपने नैतिक दायित्व का ध्यान रखता है, सावधान रहता है। सर्वतन्त्र स्वतन्त्र रहने के बावजूद वह अपनी नैतिकता से बँधा रहता है। यह नैतिकता अनुवादक, प्रकाशक, और अन्य सभी प्रयोक्ताओं के लिए समान रूप से प्रभावकारी होती है।

इस पाठ में प्रतिलिप्यधिकारमुक्त ऐसी ही कृतियों के अनुवादक, प्रकाशक एवं अन्य प्रयोक्ताओं के अधिकार एवं कर्तव्य पर चर्चा की जाएगी।

4.2 प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अनुवाद एवं पुनरुत्पादन की आजादी

विदित है कि रचनाकार के देहावसान के साठ वर्ष बाद कृति जन-क्षेत्र (Public Domain) में आ जाती है; अर्थात् उस पर किसी का प्रतिलिप्यिधिकार नहीं रह जाता है। उसका प्रकाशन, अनुवाद, रूपान्तरण, मंचन आदि कोई भी व्यक्ति कर सकता है, कानूनी तौर पर ऐसे पाठ के पुनरुत्पादन हेतु किसी से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं होती। पर, इस आजादी के बावजूद इस मामले में नैतिकता और शिष्टाचार का एक दूरस्थ अनुशासन हरदम बना रहता है। मानव सभ्यता के विकास-क्रम में, खासकर भारत की सामाजिक पद्धति में सारा कुछ कानून के उल्लेख से ही सम्पन्न नहीं हो जाता; स्थान-काल-परिवेश के अनुसार उचित-अनुचित को देखते हुए कई बार कानून की व्याख्या भी नर्म पड़ जाती है।

प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ का अर्थ हुआ कि वह कृति अब जन-क्षेत्र में आ गई। अर्थात् उस पाठ के पुनर्संचार, पुनर्प्रकाशन, पुनरुत्पादन सम्बन्धी जितने भी अधिकार मूल रचनाकार के वैधानिक उत्तराधिकारी के पास थे, वे सब समाप्त हो गए, और वे सारे अधिकार व्यक्ति केन्द्रित नहीं रहकर जन-केन्द्रित हो गए। अब जब अधिकार सार्वजनिक हो गया, तो स्वभावतः कर्तव्य भी सार्वजनिक हो गए। उस पाठ को लेकर नैतिक जिम्मेदारी व्यक्ति से निकलकर समूह में फैल गई। इस आजादी का यह अर्थ कतई नहीं कि उसके अनुवाद में मनमानी की जाए। इस आजादी का यह अर्थ तो जरूर ही है कि किसी विशिष्ट कृति का अनुवाद कोई अच्छा अनुवादक करना चाहता है; और मूल रचनाकार की मृत्यु के बाद उनके वैधानिक उत्तराधिकारी किसी अनभिज्ञता के कारण, या अहंकार के कारण, या अवांछित भावना के कारण उसके अनुवाद या पुनर्प्रस्तुति या रूपान्तरण आदि की स्वीकृति नहीं देता है; सामने आए अनुवादक अथवा प्रकाशक अथवा प्रस्तोता का अन्यथा विदोहन करना चाहता है; तो इस तरह के अंकुश से अब वह कृति बाहर आ गई। किसी विशिष्ट कृति की पुनर्प्रस्तुति, अनुवाद आदि के लिए यह एक तरफ कुछ लोगों के लिए प्रसन्नता की बात होती है, तो दूसरी तरफ अराजक स्थिति की सम्भावनाओं से भी भरी रहती है। किसी महान कृति के महान रचनाकार के मृत्यूपरान्त प्रतिलिप्यधिकार कई बार ऐसे व्यक्ति के हाथ चला जाता है, जिन्हें उस कृति के महत्त्व और कृतिकार की धारणा का सही-सही बोध नहीं होता; नासमझी अथवा अहंकार में वह अनुवादक/प्रकाशक को सन्देहास्पद दृष्टि से देखने लगते हैं और उसका अन्यथा विदोहन करने की तरकीब बनाने लगते हैं। ऐसी स्थिति में रचना का प्रतिलिप्यधिकारमुक्त हो जाना प्रसन्नता की बात होती है। चूँकि हर रचना का उद्देश्य वृहत्तर पाठक वर्ग तक पहुँचना होता है, हर कृतिकार अपनी रचनात्मकता का प्रथम उद्देश्य यही मानता है, धनार्जन उसका द्वितीयक उद्देश्य होता है। यशःप्रार्थी होना हर रचनाकार की प्राथमिक अभिलाषा होती है। रचना के पुनरुत्पादन में निरर्थक अवरोध इस उद्देश्य को आहत करता है, इसलिए प्रतिलिप्यधिकारमुक्त होने पर अवरोध समाप्त हो जाता है। किन्तु इस आजादी का भयावह दुष्प्रभाव यह होता है कि इस क्षेत्र में विवेकहीनता और अनैतिकता का परचम लहराने लगता है। रचना और रचनाकार के तमाम उद्देश्यों को दरकिनार कर अनुवाद, प्रकाशन, प्रस्तुति, पुनरुत्पादन आदि से जुड़े कुछ अगम्भीर लोग उसके मूल स्वरूप को अपनी सहूलियत के लिए अराजक और विकृत उपयोग करते हैं, यहाँ तक कि मूल रचनाकार या रचनाकार के वंशजों के लिए न्यूनतम शिष्टाचार भी भूल जाते हैं।

4.3 प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अनुवाद के प्रकाशन की आजादी

कोई कृति जब प्रतिलिप्यधिकारमुक्त हो जाती है, तो स्वभावतः उसका अनुवाद करवा कर अपना व्यावसायिक उत्थान करने के लिए कोई भी प्रकाशक आजाद हो जाता है। पर, इस आजादी के बावजूद उसे अपनी व्यावसायिक नैतिकता का ध्यान रखना होता है। जगजाहिर है कि प्रकाशन उद्योग एक व्यवसाय है, जिसका मूल उद्देश्य अपनी पूँजी लगाकर, वापस धन कमाना होता है; पर इस व्यावसायिकता में भी एक नैतिकता लगातार बनी रहती है। वैसे तो हर व्यवसाय का अपना शिष्टाचार होता है, अपनी नैतिकता होती है, पर प्रकाशन व्यवसाय में खासकर, सम्पूर्ण व्यावसायिकता के बावजूद एक तरह का मिशन होता है। प्रकाशक, घोषित रूप से रचनाकार और पाठक के बीच सम्बन्ध-सरोकार स्थापित करने वाला महत्त्वपूर्ण घटक होता है। अपने भावकों तक सहजता से पहुँचने का एक मात्र साधन हर रचनाकार के लिए

प्रकाशक ही होता है। उसके पास उस व्यवसाय का पूरा तन्त्र होता है, पूरी व्यवस्था होती है। वह भाषा में उपजे ज्ञान-स्रोत को वृहत्तर समुदाय तक पहुँचाने का उद्यमी होता है। इसलिए, प्रकाशन वृत्ति से जुड़े लोगों से अपेक्षा की जाती है कि बीते कुछ दशकों में उभरे व्यावसायिक कलुष से वे बचे रहें।

प्रतीक अर्थों में रचना, किसी प्रकाशक के लिए पूजा के वे फूल हैं, जिसे वह अपने व्यवसाय की खेती में परिवर्द्धित भी करता है, और व्यवसाय की अर्चना में भेंट भी चढ़ाता है। इसी तरह रचनाकार, उस फूल का पेड़ होता है। अब यह पेड़ और फूल तो अपने वैशिष्ट्य और अपनी गुणवत्ता के साथ अपनी जगह परिपूर्ण रहता है; प्रकाशक उस फूल को किस तरह पेश करे, यह उसके कौशल पर निर्भर करता है! कृतियों के प्रचार-प्रसार में प्रकाशकों के कौशल और पहचान की भी बड़ी भूमिका होती है। प्रकाशकीय निष्ठा के कारण कई बार कृतियों की प्रतिष्ठा का स्तर ऊँचा भी होता है, प्रकाशकीय अनुभवहीनता अथवा कौशल के अभाव के कारण कई बार बेहतर से बेहतर कृति की दुर्दशा हो जाती है।

पाठक-समुदाय में रचनाकार-अनुवादक-प्रकाशक की पहचान का भी बड़ा महत्त्व होता है। इनमें से हरेक की ख्याति हर किसी की पहचान को उजागर करती है। एक पुस्तक-प्रेमी यदि किसी रचनाकार और अनुवादक से अपरिचित है, किन्तु उस प्रकाशक की व्यावसायिक निष्ठा से भलीभाँति परिचित है, तो वह मानकर चलेगा, कि इस प्रकाशक ने जिस रचनाकार की जिस रचना का अनुवाद जिस अनुवादक से करवा कर प्रकाशित किया है, उसकी गुणवत्ता निश्चय ही असन्दिग्ध होगी। ठीक इसी तरह श्रेष्ठ रचनाकारों और श्रेष्ठ अनुवादकों के साहचर्य से प्रकाशकों की प्रतिष्ठा भी बढ़ती है।

अब इस प्रक्रिया में प्रकाशक को अपनी अर्जित प्रतिष्ठा और व्यावसायिक नैतिकता, पारस्परिक आचार-संहिता के अनुपालन का बड़ा महत्त्व होता है। हर कोई जानता है कि वस्तु, व्यक्ति और बिम्ब का आकार ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, उनकी पहचान और प्रतिष्ठा ज्यों-ज्यों ऊँची होती जाती है, उसे अपनी असंगत वृत्तियों को छुपाने की जगह कम होती जाती है। जाहिर है कि अर्जित प्रतिष्ठा का स्तर बचाने के लिए व्यक्ति अथवा संस्था को अपने विवेक और निष्ठा का परिचय भी बड़ी सावधानी से देना होता है। किसी व्यक्ति या संस्था को जो समाज बड़े अनुराग से प्रतिष्ठा देता है, उससे वह समाज अपेक्षाएँ भी बहुत रखता है। उसकी जरा-सी चूक पर वह सारी प्रतिष्ठा को मटिया-मेट भी कर देता है। ऐसे में एक प्रकाशक को किसी कृति का अनुवाद करवाकर प्रकाशित करते समय बहुत सावधान रहना पड़ता है।

सवाल किसी कृति के अनुवाद की उपादेयता से शुरू होता है। कोई प्रकाशक किसी कृति का अनुवाद करवाकर प्रकाशित क्यों करवाना चाहता है? वह तो व्यवसायी है, व्यावसायिक लाभ की सम्भावना देखे बगैर वह उसका अनुवाद करवाकर प्रकाशित करवाने की बात तो सोचेगा नहीं। अब यहीं से प्रकाशक की नैतिकता और सामाजिक सरोकार काम करने लगता है। समाज में किसी कृति के अनुवाद की अत्यधिक माँग, और कृति की भरपूर बिक्री की सम्भावना देखकर कोई निश्चय ही उसका प्रकाशन करना चाहेगा, पर यदि कृति से समाज-हित की सुनिश्चिति न हो, पाठकों की पठन-रुचि भ्रष्ट होने की सम्भावना हो, पाठक-समुदाय में मानसिक विकृत्ति फैले, सामाजिक दुराचार को बढ़ावा मिले, राष्ट्र-प्रेम आहत हो, मानवीय द्रोह फैले... तो वह व्यावसायिक लाभ की स्थिति सुनिश्चित रहने के बावजूद अपनी अर्जित प्रतिष्ठा के मद्देनजर ऐसी कृति के प्रकाशन से परहेज करेगा। पर किसी कृति के अनुवाद में ये आशंकाएँ न दिखें, समाज और संस्कृति की संवृद्धि की सम्भावना दिखे, तो उसका प्रकाशन वह जरूर करवाना चाहेगा।

इस तरह व्यवसाय और समाज के समन्वित लाभ से भरी हितकारी रचना यदि प्रतिलिप्यधिकारमुक्त होती है, तो प्रकाशक उसका अनुवादक करवाकर प्रकाशित करने हेतु स्वाधीन होता है। इस बिन्दु पर आकर फिर से उसका व्यावसायिक विवेक सामने खड़ा होता है। किसी प्रकाशक के लिए अपने व्यवसाय के प्रति नैष्ठिक होना जितना जरूरी होता है, मूल कृति के पाठ और रचनाकार के रचनात्मक उत्कर्ष को बचा रखना भी उसके लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है। अपने बुद्धि-विवेक से उसे निश्चय ही प्रयास करना चाहिए कि कृति का अनुवाद कोई योग्य व्यक्ति करे। न्यूनतम अनुवाद शुल्क के भुगतान से जैसे-तैसे अयोग्य अनुवादक द्वारा अनुवाद करवाकर वह कृति और कृतिकार की मूलभाषा की छवि को धूमिल न करे। किसी विशिष्ट कृति का अनुवाद एक जमे-जमाए पेड़ को एक मिट्टी से निकालकर दूसरी मिट्टी में लगाने, और उसे पूरी तरह हरा-भरा रखने का कार्य है। यह एक तरफ पुनीत कार्य है, तो दूसरी तरफ

जोखिमों से भरा हुआ भी। इसलिए तात्कालिक बचत की गुंजाइश देखकर भी कोई प्रतिष्ठित प्रकाशक किसी कृति की मूल आत्मा को आहत न करे, वह निश्चय किसी ऐसे अनुवादक की तलाश करे, जो उस कृति के मूलपाठ और लक्ष्यभाषा के लक्षित पाठक समुदाय के बीच एक व्यावहारिक सन्तुलन बनाए रखे। इसके लिए अनुवाद शुल्क का निर्धारण तो प्रकाशक-अनुवादक के आपसी समझौतों पर होगा, पर अनुवाद की गुणवत्ता के मूल्य पर कोई समझौता नहीं होना चाहिए। प्रकाशक का दायित्व इसके आगे भी बना रहता है। प्रतिलिप्यधिकारमुक्त होने के कारण प्रकाशक को आजादी तो है कि वह उस पाठ का अनुवाद करवाए और उसे प्रकाशित करवाकर धनार्जन करे; पर उसे यह आजादी नहीं है कि वह उस कृति पर मूल रचनाकार को श्रेय न दे, या कि व्यावसायिक हित में कुछ ऐसा कर बैठे जिससे मूल पाठ की आत्मा और मूल रचनाकार की प्रतिष्ठा आहत हो। कृति का किसी भी तरह अंगभंग करने का हक उसे नहीं है। यह बन्धन कानून का न भी हो, पर नैतिकता का अवश्य है।

जन-क्षेत्र में आ जाने के बावजूद पाठ में किसी तरह की विकृति लाने अथवा मूल रचनाकार के श्रेय के साथ किसी तरह का दुर्व्यवहार करने से पाठक समुदाय भी कुपित होता है, और पाठक-समुदाय में विश्वसनीयता बनाए रखना उसकी व्यावसायिक प्रतिष्ठा को रेखांकित करता है।

इसी तरह अनुवादक को समुचित मानदेय दे देने के बावजूद कृति पर अनुवादक को श्रेय देना भी उसकी नैतिकता और व्यावसायिक विश्वसनीयता से जुड़ा है। कृति के प्रकाशन सौष्ठव का ध्यान रखना प्रकाशक के अपने व्यवसाय के हित में तो है ही, मूल रचना और मूल रचनाकार के सम्मान में भी यह जरूरी है।

प्रकाशक का नैतिक दायित्व यह भी है कि कृतिकार का कोई वंशज, जिसका उस कृति से विरासतीय हक छिन गया है, उसे धन लाभ भले न कराए, कम से कम प्रकाशित कृति की मानद प्रति, प्रकाशित कृति के प्रचार-प्रसार और बढ़ती लोकप्रियता की सूचना, तथा अतिरिक्त प्रति की खरीद करने पर उन्हें समुचित सम्मान अवश्य दे। इस आचरण से निश्चय ही उसकी व्यावसायिक प्रतिष्ठा उत्कर्ष की ओर जाएगी।

4.4 प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अन्य प्रयोक्ताओं की आजादी

मौटे तौर पर अनुवाद का अर्थ यह लगाया जाता रहा है कि एक भाषा के पाठ की शब्दावली, पद और वाक्य के समानार्थी शब्दावली, पद और वाक्य दूसरी भाषा में दे दिए जाएँ; पर यह अनुवाद की समग्र परिभाषा नहीं है। अनुवाद आज हमारे जीवन-फलक में विराट अर्थ के साथ उपस्थित है। अनुवाद अब केवल शब्द से शब्द, पद से पद, या वाक्य से वाक्य में नहीं होता; यह विमर्श (Discourse) से विमर्श में होता है। हम जो कुछ अनुभव करते हैं, उसकी अभिव्यक्ति भी अनुवाद ही है। ध्वनियों में या भाषा में अनुभव की अभिव्यक्ति भी अनुवाद कहलाता है। इसके अलावा वाचिक-प्रसंगों की आंगिक चेष्ठा में अभिव्यक्ति, घटना-प्रसंगों की चित्रकला या मूर्तिकला में अभिव्यक्ति, कहानी या उपन्यास का नाट्य-रूपान्तरण, गीत या कविता का नृत्याभिनय में रूपान्तरण, घटनाओं का दृश्य-श्रव्य कलात्मक रूपान्तरण पौराणिक कथाओं, गाथाओं का पुनर्कथन, जटिल पाठ की टीका, भाषणों का निर्वचन, कथासूत्रों पर धारावाहिक, लघु चलचित्र या पूर्ण चलचित्र... सबके सब अनुवाद हैं। इसलिए किसी विशिष्ट कृति का लिखित भाषा में अनुवाद करने के अलावा ये जितने कार्यकर्त्ता हैं—रूपान्तरणकर्ता, अभिनेता, प्रस्तोता, निर्देशक, रंगकर्मी, आँकड़ा निर्माता, वेबसाइट निर्माता... सारे प्रयोक्ता अनुवादक ही हैं।

जब कोई पाठ प्रतिलिप्यधिकारमुक्त हो जाता है, तो उक्त सारे प्रयोक्ता उस पाठ के भाषान्तरण, रूपान्तरण, विधान्तरण अथवा पाठाश्रित पुनर्रचना के लिए स्वाधीन हो जाते हैं, अपनी पुनर्प्रस्तुति अथवा पुनर्रचना के लिए या कि फिर उसी रूप में पुनरुत्पादन के लिए निःशंक हो जाते हैं, अपने उद्यम में अग्रसर होने के लिए उन्हें किसी की सहमति-स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती। पर तथ्य है कि यह आजादी उनकी सम्पूर्ण आजादी नहीं होती। केवल कानूनी तौर पर निर्बन्ध हो जाना मानव जीवन की सबसे बड़ी आजादी नहीं है। आम तौर पर समाज में मौलिक अधिकारों की स्वाधीनता के लिए कहा जाता है कि हर किसी की स्वाधीनता वहाँ खत्म हो जाती है, जहाँ से दूसरों की नाक शुरू होती है। मनुष्य के जीवन-व्यवहार में नैतिकता और शिष्टाचार एक ऐसा बन्धन है, जो हर किसी को संयमित रहने की प्रेरणा

देता है। इसलिए कोई प्रयोक्ता जब प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ का विदोहन अपने कौशल के अनुसार करना शुरू करता है, तो उनके समक्ष वे सारे नैतिक सूत्र खड़े रहते हैं कि रचनाकार (भले ही वे लेखक हों या अनुवादक) भले ही जीवित न हों, पर उनकी जिन सन्ततियों या वैधानिक उत्तराधिकारियों का प्रतिलिप्यधिकार छिन गया है, उन्हें उनके पूर्वज की कृति पर प्रस्तुत पुनर्रचना के अवलोकन की सूचना देकर अवश्य सम्मानित करें। अपने व्यावसायिक लाभ को उत्कर्ष देने हेतु मूल पाठ अथवा मूल अनुवाद में कोई ऐसा परिवर्तन न करें, जिससे उस पाठ की आत्मा, रचनाकार की प्रतिष्ठा अथवा अनुवादक के कौशल पर कोई आँच आए। इसके साथ-साथ उन प्रयोक्ताओं का यह भी दायित्व बनता है कि उन कृतियों का आंशिक अथवा पूर्णतः कोई ऐसा उपयोग न करें, जिससे किसी तरह किसी जाति, वर्ग, धर्म, देश, समाज, मानवीयता, नैतिकता आदि को आघात लगे। जाहिर है कि उन नैतिकताओं का अनुपालन अपने उद्यमों में प्रवीण व्यक्ति करेंगे, क्योंकि ऐसे लोग अपनी प्रस्तुति के लिए आश्वस्त रहते हैं कि उसके अवलोकन से हरेक भावक अवश्य ही आनन्दित होंगे। इन दिनों हर पेशे में व्यावसायिक तौर पर अपटु लोगों का ऐसा प्रवेश होने लगा है कि उन्हें अपने व्यवसाय के प्राथमिक शिष्टाचार की ही सही और बुनियादी जानकारी नहीं होती, वे लेखक और अनुवादक के सम्मान की परवाह क्या करेंगे! केवल साहित्य की ही बात करें और बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय, शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय और मुंशी प्रेमचन्द के साहित्य को ही गम्भीरता से देखा जाए, तो बेशुमार संस्करणों के प्रकाशन के बावजूद प्रमाणिक पाठ बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। इस दिशा में भी अराजक पद्धति से पाठ की प्रयुक्ति भविष्यगामी शोध-धारा को सन्दिग्ध करती है।

4.5 मूल पाठ के प्रति अनुवादक, प्रकाशक एवं अन्य प्रयोक्ताओं की निष्ठा

प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अनुवादक, प्रकाशक एवं अन्य प्रयोक्ताओं की सुविधा-असुविधा, विवेक, नैतिकता की जितनी भी बातें हुईं; वे सब मूलपाठ के प्रति इनकी निष्ठा से जुड़ी हैं। अपने-अपने कौशल एवं कला-विधा में पाठ की पुनर्प्रस्तुति के लिए अनुवादक, प्रकाशक, एवं अन्य प्रयोक्ताओं को आजादी अवश्य मिल जाती है, पर इस आजादी का अर्थ स्वेच्छाचारिता नहीं होता। किसी रचना के मूल स्वरूप को विरूपित करना, जन और समुदाय के अनिष्ट में उसका उपयोग करना, किसी भी तरकीब से रचना को अपने मौलिक उद्देश्य से भटकाना अथवा उसकी अभद्र प्रस्तुति करना हर प्रयोक्ता को अपराधी साबित करता है। इतिहास गवाह है कि मानव सम्भता के प्रारम्भिक दौर से हरेक सृजन, हरेक कला, हरेक कौशल का पुनीत उद्देश्य जन और समुदाय का हितसाधन होता है। हर रचना किसी न किसी मंगलकारी उद्देश्य से की जाती रही है। गौरतलब है कि पाषाण युग से लेकर आज तक जितने भी औजार, अस्त्र-शस्त्र आदि गढ़े गए हैं; यहाँ तक कि जितने भी परमाण्विक हथियारों के आविष्कार हुए हैं, सब के सब किसी न किसी समुदाय, राष्ट्र और मानवीयता को अनिष्ट और अमंगलकारी आचरणों से बचाने के लिए हुए हैं। ऐसे में किसी रचना का दुरुपयोग, विरूपण, उद्देश्य से भटकाव, श्रेय-हरण .., पाप है, दुर्वृत्ति है, अनैतिक है। सभी प्रयोक्ताओं को इस दुराचार से बचना चाहिए। जिस रचना की पुनर्प्रस्तुति का नैष्ठिक कौशल प्रयोक्ता के पास न हो, उसमें वे जबरदस्ती न करें, यही नैतिक है, यही नैष्ठिक है, यही उचित है। इससे इतर यदि कोई प्रयोक्ता कुछ करता है, तो वह न केवल अनुचित मार्ग अपनाकर अपने हित-साधन के लिए पाप करता है, बल्कि भविष्य के शोध को दिग्भ्रान्त भी करता है।

4.7 सारांश

रचनाकार की मृत्यु के साठ वर्ष बाद नियमतः कोई कृति प्रतिलिप्यधिकारमुक्त हो जाती है। अर्थात् उस पर किसी का प्रतिलिप्यिधिकार नहीं रह जाता है। उसका प्रकाशन, अनुवाद, रूपान्तरण, आत्मसातीकरण, संक्षेपण, विधान्तरण, मंचन आदि कोई भी व्यक्ति कर सकता है, कानूनी तौर पर ऐसे पाठ के पुनरुत्पादन हेतु किसी से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं होती। पर, इस आजादी के बावजूद नैतिकता और शिष्टाचार का एक दूरस्थ अनुशासन हरदम बना रहता है। कृति विशेष की गरिमा बनाए रखने के लिए इन उद्यमियों के समक्ष एक विवेक खड़ा रहता है, जिस कारण वह उस रचना, रचनाकार, भाषा, समाज, संस्कृति आदि के प्रति अपने नैतिक दायित्व का ध्यान रखता है, सावधान रहता है। यह नैतिकता अनुवादक, प्रकाशक, और अन्य सभी प्रयोक्ताओं के लिए समान रूप से प्रभावकारी होती है।

मूल रचनाकार की मृत्यु के बाद उनके वैधानिक उत्तराधिकारी कई बार किसी अनभिज्ञता, अहंकार, या अवांछित भावना के कारण जब कृति के अनुवाद या पुनर्प्रस्तुति की अनुमति नहीं देता है; सामने आए अनुवादक/प्रकाशक/प्रस्तोता का अन्यथा विदोहन करना चाहता है; ऐसी स्थिति के लिए कृति का जन-क्षेत्र में आ जाना एक तरफ यह प्रसन्नता की बात होती है, तो दूसरी तरफ अराजक स्थिति की अपार सम्भावनाएँ भी खड़ी रहती हैं। हर रचना का प्राथमिक उद्देश्य वृहत्तर पाठक वर्ग तक पहुँचना होता है, रचना के पुनरुत्पादन में निरर्थक अवरोध इस उद्देश्य को आहत करता है, इसलिए प्रतिलिप्यधिकारमुक्त होने पर अवरोध समाप्त हो जाता है। किन्तु इस आजादी का भयावह दुष्प्रभाव यह होता है कि इस क्षेत्र में विवेकहीनता और अनैतिकता का परचम लहराने लगता है। रचना और रचनाकार के तमाम उद्देश्यों को दरकिनार कर अनुवाद, प्रकाशन, प्रस्तुति, पुनरुत्पादन आदि से जुड़े कुछ अगम्भीर लोग उसके मूल स्वरूप को अपनी सहूलियत के लिए अराजक और विकृत उपयोग करते हैं, यहाँ तक कि मूल रचनाकार या रचनाकार के वंशजों के लिए न्यूनतम शिष्टाचार भी भूल जाते हैं।

जन-क्षेत्र में आ जाने के बावजूद पाठ में किसी तरह की विकृति लाने अथवा मूल रचनाकार के श्रेय के साथ किसी तरह का दुर्व्यवहार करने से पाठक समुदाय भी कुपित होता है, और पाठक-समुदाय में विश्वसनीयता बनाए रखना उसकी व्यावसायिक प्रतिष्ठा को रेखांकित करता है।

इसी तरह अनुवादक को समुचित मानदेय दे देने के बावजूद कृति पर अनुवादक को श्रेय देना भी उसकी नैतिकता और व्यावसायिक विश्वसनीयता से जुड़ा है। कृति के प्रकाशन सौष्ठव का ध्यान रखना प्रकाशक के अपने व्यवसाय के हित में तो है ही, मूल रचना और मूल रचनाकार के सम्मान में भी यह जरूरी है।

प्रकाशक का नैतिक दायित्व यह भी है कि कृतिकार का कोई वंशज, जिसका उस कृति से विरासतीय हक छिन गया है, उसे धन लाभ भले न कराए, कम से कम प्रकाशित कृति की मानद प्रति, प्रकाशित कृति के प्रचार-प्रसार और बढ़ती लोकप्रियता की सूचना, तथा अतिरिक्त प्रति की खरीद करने पर उन्हें समुचित सम्मान अवश्य दे। इस आचरण से निश्चय ही उसकी व्यावसायिक प्रतिष्ठा उत्कर्ष की ओर जाएगी।

किसी भी रचना का दुरुपयोग, विरूपण, उद्देश्य से भटकाव, श्रेय-हरण ... जैसे अनुचित मार्ग अपनाकर अपने हित-साधन का पाप किसी प्रयोक्ता को नहीं करना चाहिए।

4.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ से आप क्या समझते हैं? ऐसे पाठ के के अनुवाद एवं पुनरुत्पादन की आजादी का क्या अर्थ है?– विस्तार से लिखिए।
2. प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के अनुवाद के प्रकाशन की आजादी एवं दायित्व का विवेचन कीजिए।
3. प्रतिलिप्यधिकारमुक्त पाठ के विभिन्न प्रयोक्ताओं का परिचय देते हुए उनके नैतिक दायित्व की व्याख्या कीजिए।
4. मूल पाठ के प्रति अनुवादक, प्रकाशक एवं अन्य प्रयोक्ताओं की निष्ठा का उल्लेख करते हुए व्यावसायिक शिष्टाचार पर अपनी राय दीजिए।

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम, 1957*
- मिश्र, जयप्रकाश (डॉ.), *बौद्धिक सम्पदा अधिकार : एक परिचय,* इलाहाबाद, सेण्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स।
- Bhandari, M.K., *Intellectual Property Rights*, Allahabad, Central Law Publication.
- खन्ना, सन्तोष, *भारतीय कानूनों का समाज शास्त्र,* दिल्ली, भारत ज्योति प्रकाशन।
- गुप्त, गार्गी एवं टण्डन, पूरनचन्द(सं.), *अनुवाद बोध,* नई दिल्ली, भारतीय अनुवाद परिषद।

- भाटिया, कैलाश चन्द्र, *अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग,* नई दिल्ली, तक्षशिला प्रकाशन।
- टण्डन, पूरनचन्द(सं.), *अनुवाद शतक (भाग 1 एवं 2),* नई दिल्ली, भारतीय अनुवाद परिषद।
- सिंहल, सुरेश, *अनुवाद : संवेदना और सरोकार,* दिल्ली, संजय प्रकाशन।
- तिवारी, भोलानाथ, *अनुवाद विज्ञान,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- अय्यर, एन.ई. विश्वनाथ, *अनुवाद कला,* दिल्ली, प्रभात प्रकाशन।
- गुप्त, अवधेश मोहन, *अनुवाद विज्ञान : सिद्धान्त और सिद्धि,* दिल्ली, राष्ट्रभाषा प्रकाशन।
- कुमार, सुरेश, *अनुवाद सिद्धान्त की रूपरेखा,* नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
- *अनुवाद(पत्रिका),* अनुवाद कला का प्रशिक्षण विशेषांक, अंक 53, नई दिल्ली, भारतीय अनुवाद परिषद।
- शर्मा, रामविलास, *भाषा और समाज,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

MPDD/IGNOU/P.O.1T/MAY, 2014

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ISBN: 978-81-266-6718-5